नादार्चन

1992

DLW Cinema Club

Members are requested to
please keep the hall and
Surrounding clean and tidy

From

DLW Cinema Club

उपहार-प्रति

नादार्चन संगीत-वार्षिकी-1992

सम्पादक :

डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

संस्थापक :

श्री दिवाकर पाठक

परामर्श मण्डल :

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ

डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा

डॉ० (श्रीमती) एन० राजम

डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर

डॉ० सुभद्रा चौधरी

सह सम्पादक :

श्री प्रमोद कुमार पाठक

संयोजक :

श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह

प्रकाशक :

श्री शिव-काली मन्दिर संगीत समिति

डीरेका, वाराणसी–221004

मुद्रक :

जयभारत प्रिंटिंग प्रेस

सूरजकुण्ड, वाराणसी ।

आवरण मुद्रक :

खण्डेलवाल प्रेस एण्ड पब्लिकेशन्स, वाराणसी ।

पद्मपत्रप्रभः षड्ज, ऋषभः शुकवर्णकः । कनकाभस्तु गान्धारो, मध्यमः कुन्दसन्निभः ॥
पञ्चमस्तु भवेत् कृष्णः, पीतवर्णस्तु धैवतः । निषादः सर्ववर्णोऽयं विज्ञेयः स्वरवर्णकः ॥

—आवरण पृष्ठ पर संगीत के सात स्वर, (बृहद्देशी)

पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ लेखकों के अपने विचार हैं, सम्पादक किसी विवाद के लिए उत्तरदायी नहीं है ।
कृपया प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका का कोई भी अंश अन्यत्र प्रकाशित न किया जाय ।

शुभाशंसनम्

पत्रिका आतपत्रा स्यात् मुदिताः सन्तु गायकाः ।
संवादिनो वादकाः स्युः स्वस्था नृत्यन्तु नर्तकाः ॥

—गजानन शास्त्रि मुसलगाँवकरः

× × × ×

विषय-सूची

1. शुभकामनाएँ		
2. सम्पादकीय		
3. नादार्चन-प्रवेशाङ्क—प्राक्कथन (1991)		
4. प्रयोगात्मक कलाएँ : प्रयोक्ता और प्रेक्षक का अन्तः सम्बन्ध	—डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार	1–5
5. ख़याल-गायन के प्रमुख घराने एवं उनका तात्विक विश्लेषण	—डॉ० आर० ह्वी० कविमण्डन	6–10
6. 'धातु' संगीत में 'इण्टरडिसिप्लिनरी' अध्ययन का उदाहरण	—डॉ० सुभद्रा चौधरी	11–13
7. कलाकार का स्वरूप : संगीत के परिप्रेक्ष्य में	—स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति	14–15
8. अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख	—डॉ० राय आनन्द कृष्ण	16–19
9. जैन परिप्रेक्ष्य में संगीत	—डॉ श्रीमती कमल जैन	20–21
10. ध्रुवपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव	—डॉ० जयचन्द्र शर्मा	22–24
11. संगीत : मेरी दृष्टि में	—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा	25–28
12. दास्ताने तवायफ़ : ठुमरी और दादरा की पर्याय ये संगीत-साधिकाएँ	—श्री गजेन्द्र नारायण सिंह	29–37
13. संगीतशास्त्र में विज्ञान	—डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा	38
14. रंगों की पृष्ठभूमि : सांगीतिक सात स्वरों के रंग	—डॉ० आदिनाथ उपाध्याय	39–48
15. सांगीतिक समस्याएँ	—डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित	49–51
16. कला के क्षेत्र में रसानुभूति	—डॉ० विमला मुसलगाँवकर	52–54
17. काव्यांञ्जलि	—श्री शिवसेवक त्रिपाठी	55
18. हमारे लेखक–रचनाकार		56
19. शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ		57
20. शिव-काली मन्दिर की सांस्कृतिक गतिविधियाँ		60
21. नादार्चन संगीत वार्षिकी–1991 की विषयवस्तु		64
22. 'नादार्चन' प्रवेशाङ्क—प्रासंगिकी : शुभकामनाएँ–अभिव्यक्तियाँ-उद्गार		65

× × × ×

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न स योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥

—नाट्यशास्त्र

चतुराननतनयोऽयं लोकेप्रससार नाट्यवेदममुम् ।
विश्वश्लाघ्यं सुयशो भरतमुनिः प्राप्तवानमरः ॥
अभिवन्द्यो भरतमुनिर्ब्रह्मकृतं नाट्य शास्त्र मनुकुर्वन् ।
लोकानां व्यवहारं, सुघटितमकरोत् पुनर्लोके ॥

ललित कलाओं के विश्वकोष 'नाट्यशास्त्र' के प्रणेता,

'नाट्यवेद' के आदि आचार्य;

जिन्होंने

भारत की समस्त कला-चेतना को

अपनी सृजनात्मक प्रतिभा से अनुप्राणित किया;

संपूर्ण विश्व का मार्ग-दर्शन किया ।

उन

प्रातस्स्मरणीय, परम पूज्य विभूति

भरत मुनि

को सश्रद्ध समर्पित ।

प्रमोद कुमार

महाप्रबन्धक

डीजल रेल इञ्जन कारखाना

वाराणसी।

मुझे प्रसन्नता है कि इस वर्ष भी शारदीय नवरात्र के शुभ अवसर पर श्री शिवकाली मन्दिर समिति संगीत-सम्मेलन का आयोजन तथा 'नादार्चन' संगीत-पत्रिका का प्रकाशन कर रही है।

कार्यक्रम की सफलता के लिये आयोजकों तथा कलाकारों को मेरी शुभकामनायें।

प्रमोद कुमार

महाप्रबन्धक

सम्पादक

नादार्चन

शिव-काली मन्दिर संगीत समिति

डी० रे० का० वाराणसी।

ॐ

हमारे प्रेरणा-स्रोत

ब्रह्मलीन पूज्य श्री बंगाली बाबा

'नादार्चन' 1992

लोकार्पण-कार्यक्रम की मुख्य अतिथि

संगीत-जगत् की प्रकाशस्तंभ, परम विदुषी
श्रद्धेया डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा

शिव-काली मन्दिर संगीत-समिति के अध्यक्ष

श्री लक्षू महाराज

डी रे का परिवार के संरक्षक

हमारे महाप्रबन्धक श्री प्रमोद कुमार

सम्पादकीय

नादार्चन-प्रवेशाङ्क के सम्पादकीय प्राक्कथन में मैंने निवेदन किया था कि यह पात्रिका संगीत के प्रयोक्ताओं-श्रोताओं, शिक्षकों-शिक्षार्थियों, शोधार्थियों, समालोचकों, आयोजकों आदि सभी के लिए उपकारक सिद्ध होगी, इसी दिशा में अग्रसर रहते हुए 'नादार्चन' का यह अंक अपने शैशव के द्वितीय वर्ष में प्रवेश कर रहा है। प्रस्तुति के सम्बन्ध में दो शब्द कहने के पूर्व सहभागी लेखकों को साधुवाद देता हूँ।

रस-सम्प्रेषण के परिप्रेक्ष्य में प्रयोक्ता एवं प्रेक्षक के अन्तःसम्बन्धों की भूमिका निर्विवाद है। दूसरे शब्दों में रस-सम्प्रेषण की पूर्णता प्रयोक्ता एवं प्रेक्षक के अन्तः तादात्म्य पर आधारित होती है। डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार के द्वारा इसी तथ्य को 'प्रयोगात्मक कलाएँ : प्रयोक्ता और प्रेक्षक का अन्तः संबंध' के माध्यम से अन्यान्य पक्षों का ग्रहण करते हुए 'साधारणी करण' सहित सपूर्ण रहस्य को बड़ी सरलता एवं सहजता के साथ अनावृत, स्पष्ट किया गया है।

'घराना' हमारे संगीत का मेरुदण्ड है। नादार्चन-प्रवेशाङ्क में 'घराना' की अवधारणा का एक सामान्य परिचय दिया जा चुका है। इस प्रकार 'नादार्चन' के माध्यम से घराना-विषयक लेख-श्रृंखला की यह दूसरी कड़ी है। डॉ० आर० ह्वी० कवि मण्डन ने हाँ 'खयाल गायन के प्रमुख घराने एवं उनका तात्विक विश्लेषण' शीर्षक से घरानों के शैलीगत भेदों का वर्गीकृत सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है।

पिछले वर्षों में ज्ञान-विज्ञान की प्रायः सभी शाखाओं में एक नयी पद्धति विकसित हुई है अन्तरवलम्बन अथवा अन्तरानुशासनिक (Interdisciplinary) अध्ययन की। किन्तु हमारी परम्परा में यह विद्या पहले से ही किस प्रकार विद्यमान रही है ? तथा विशेष रूप से संगीत के क्षेत्र में इस दिशा में किस प्रकार का काम हो सकता है, इसी परिप्रेक्ष्य में तर्क संगत दृष्टि दी है डॉ० सुभद्रा चौधरी ने 'धातु : संगीत में इण्टरडिसिप्लिनरी अध्ययन का एक उदाहरण' के माध्यम से।

'कलाकार का स्वरूप : संगीत के परिप्रेक्ष्य में' अपनी इस विचारोत्तेजक अभिव्यक्ति में स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति ने कला के क्षेत्र में संगीत की भूमिका को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए संगीत-कलाकार को देवदूत की संज्ञा दी है तथा उससे उसी के अनूरूप आचरण की अपेक्षा पर बल दिया है।

'अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख' शीर्षक से डॉ० राय आनन्द कृष्ण द्वारा इस ऐतिहासिक गवेषणा के माध्यम से तानसेन विषयक चर्चा सहित संगीतिक महत्त्व की अनेक सूचनाओं को प्रकाश में लाया गया है।

आमधारणा यह है कि जैन-परम्परा निवृत्ति-प्रधान है इसलिए वहाँ संगीत का निषेध होगा। किन्तु डॉ० कमल जैन ने 'जैन परिप्रेक्ष्य में संगीत' के माध्यम से तथ्यपरक विवेचन के द्वारा इस धारण को भ्रान्ति मूलक बताते हुए यह स्पष्ट किया है कि निवृति-प्रधान जैन-परम्परा में संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

डॉ० जयचन्द शर्मा ने 'ध्रुवपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव' लेख के अन्तर्गत ध्रुवपद के स्वरुपगत वैशिष्ट्य, ध्रुपद की 12 मात्रा तथा षट्चक्र कमलदल से उसकी सम्बद्धता, ध्रुवपद का ध्यान-चित्र आदि बिन्दुओं के माध्यम से महत्त्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन करते हुए यह सिद्ध किया है कि ध्रुवपद पर प्राकृतिक तत्वों का सर्वाधिक प्रभाव है।

'संगीत : मेरी दृष्टि में' यहाँ प्रो०रवीन्द्रनाथ ओझा ने कलाओं के वैशिष्ट्य को प्रतिपादित करते हुए भाव-प्रभाव की दृष्टि से संगीत को सर्वोच्च बताया है, और यह भी कहा है कि संगीत में जो रस-माधुर्य है वह अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-कला से सम्पृक्त तथा संगीत-माधुर्य से ओत-प्रोत प्रो० ओझा की 'स्वानुभूतिक' अभिव्यक्ति पाठक को एक अलौकिक धरातल पर पहुँचा देती है।

'दास्ताने तवायफ़ : ठुमरी और दादरा की पर्याय ये संगीत-साधिकाएँ' शीर्षक से डॉ० गजेन्द्र नारायण सिंह ने तथ्यपरक सर्वेक्षण के आधार पर यह प्रतिपादित किया है कि ठुमरी और दादरा जैसी उपशास्त्रीय संगीत विधाओं के संरक्षण एवं उन्हें जीवन्त रखने में संगीत-साधिका इन तवायफों का अप्रतिम योगदान रहा है। डॉ० सिंह ने इन संगीत साधिकाओं की जीवन-शैली के संबंध में हेय समझी जाने वाली भ्रान्तियों का भी निराकरण किया है।

'संगीतशास्त्र में विज्ञान' के माध्यम से डॉ० प्रेमलता शर्मा ने तथाकथित आधुनिक विज्ञान (Science) की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए, भारतीय परम्परा में परीक्षण की अध्यात्मसंज्ञक

प्रयोगशाला का उल्लेख किया है। इसी क्रम में आपने शारीरी-दारवी वीणा, ध्वनि के नीच, मध्य, उच्च रूपों के स्थान एवं गुणोत्तर प्रमाण, वाद्य-निर्माण की आदिम प्रक्रिया आदि उदाहरणों के द्वारा यह स्पष्ट कर दिया है कि हमारे शास्त्र ग्रन्थों में ऐसी अनेक उपलब्धियाँ दृष्टिगोचर होती है जो इस तथ्य की सूचक हैं कि हमारी यह आध्यात्मिक प्रयोगशाला आज की विज्ञान-प्रयोगशाला से भिन्न होते हुए भी कितनी पूर्ण और विलक्षण है।

'रंगों की पृष्ठभूमि : सांगीतिक सात स्वरों के रंग' लेख में सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड में रंगों की व्याप्ति पर प्रकाश डालते हुए संगीत के षड्ज आदि स्वरों के साथ रंगों की सहसम्बद्धता के सम्पूर्ण स्वरूप पर विचार किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में रंगों का ज्ञान-विज्ञान, रंगों के अवबोधन (perception) की जटिल प्रक्रिया, मतंग आदि ऋषियों द्वारा अनुभूत स्वरों के सात रंग, प्रस्तुत अध्ययन का आज के प्रसंग में महत्त्व आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

यहाँ यह उल्लेख करना नितान्त प्रासंगिक होगा कि इस निबंधात्मक अभिव्यक्ति के प्रेरक हमारे वे आदरणीय विद्वान्, गुरुजन एवं 'नादार्चन' के पाठक रहे हैं जिन्होंने 'नादार्चन' आवरण पृष्ठ पर चित्रांकित स्वरों के सात रंगों के विषय में कुछ जिज्ञासाएँ प्रकट की थीं। सम्पादक के नाते, 'नादार्चन' के ही माध्यम से इन सभी का स्पष्टीकरण-समाधन मेरा स्वयं का नैतिक दायित्व था।

'सांगीतिक समस्याएँ' इस लेख के अन्तर्गत डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित ने संगीत से सम्बद्ध अन्यान्य समस्याओं का वर्गीकरण करते हुए उनका सूक्ष्म सर्वेक्षण किया है। उसी क्रम में आपने संगीत-आयोजकों समीक्षकों, संगीत शास्त्रियों आदि सभी से अपने-अपने दायित्व-निर्वाह का भी आह्वान किया है।

'कला के क्षेत्र में रसानुभूति' के माध्यम से डॉ० विमला मुसलगाँवकर ने 'कला' की सम्पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करते हुए रसाभिव्यक्ति की प्रक्रिया का सूक्ष्म विवेचन किया है। आपने कला के सम्प्रेषण एवं उसकी रसानुभूति के 'कलाकार' तथा 'कलाभोक्ता' के सामंजस्य को रेखाङ्कित करते हुए उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है।

'काव्याञ्जलि' श्री शिवसेवक त्रिपाठी का अत्यन्त प्रासंगिक नवोन्मेष है। जैसा भाव वैसी ही भाषा के आदर्श को चरितार्थ करते हुए श्री त्रिपाठी ने अपनी ये दोनों रचनाएँ 'नादार्चन संगीत वार्षिकी' के लोकार्पण अवसर पर लिखी हैं। पहली रचना 'नादार्चन'-प्रस्तुति के प्रेरणा स्रोत पू० बंगाली बाबा के प्रति तथा दूसरी 'नादार्चन' संगीत वार्षिकी के प्रति समर्पित हैं।

आभार-निवेदन

'नादार्चन—1992' के प्रकाशन-अवसर पर सर्वशक्तिमान ईश्वर को बारम्बार नमन करता हूँ। पू० बंगाली बाबा तथा उन समस्त गुरुजनों को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा तथा आशीर्वाद से ही इस ज्ञान-यज्ञ को यह आयाम दे सका। सम्पादन-कार्य में प्रवृत्त करने तथा समय-समय पर उत्साहवर्धन के लिए नादार्चन के संस्थापक, भ्रातृतुल्य आदरणीय श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ।

समय-समय पर सम्पादकीय विचार-विमर्श में सहभागिता हेतु नादार्चन परामर्श मण्डल के माननीय सदस्यों तथा आदरणीया डॉ० विमला मुसलगाँवकर का आभार व्यक्त करता हूँ।

श्री शिवसेवक त्रिपाठी को प्रूफ रीडिंग एवं श्रीमती सत्या उपाध्याय (मेरी पत्नी) को प्रेस-कापी तैयार कराने में उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

लेखकों-रचनाकारों से सम्पर्क सूत्र के रूप में, चि. अजय सिंह, चि. गोविन्द कुमार वर्मा, चि. चेतन उपाध्याय ने जो अपनी सेवाएँ अर्पित कीं इसके लिए उन्हें आशीर्वाद देता हूँ।

व्यवस्था सम्बन्धी कार्यों में सहयोग के लिए श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह तथा श्री कमला सिंह को धन्यवाद देता हूँ। प्रकाशन-व्यवस्था के लिए शिव-काली मन्दिर संगीतसमिति का आभार व्यक्त करता हूँ। 'नादार्चन'–1992 के सफल मुद्रण के लिए जयभारत प्रिंटिंग प्रेस तथा आवरण-छपाई के लिए खण्डेलवाल प्रेस मेरी बधाई के पात्र हैं।

दिनांक 5 अक्टूबर, 1992
(शारदीय नवरात्र, नवमी) वाराणसी।

—आदिनाथ उपाध्याय

प्राक्कथन

(नादार्चन संगीत वार्षिकी, 1991)

बन्धूकाभां त्रिनेत्राममृतकरकलाशेखरां रक्तवस्त्रां ।
पीनोत्तुङ्गप्रवृत्तस्तनभरनमितां यौवनारम्भरूढाम् ॥
सर्वालङ्कारभूषां सरसिजनिलयां बीजसंक्रान्तमूर्ति ।
देवीं पाशांकुशाभ्यामभयवरकरां विश्वयोनिं नमामि ॥

(बृहद्देशी)

पूर्वपीठिका—पिछले दशक में शास्त्रीय संगीत के प्रति लोगों में जो नवचेतना जगी है, उसका प्रवाह देश के कोने-कोने में दृष्टिगोचर हो रहा है और ऐसे में सांस्कृतिक राजधानी काशी का तो कहना ही क्या ? काशी अर्थात नादतनु शंकर की नगरी काशी जो आदि काल से ही संस्कृति एवं संगीत का केन्द्र रही है, आज भी एक प्रकाशस्तम्भ की ही भाँति आलोकित है । एक ओर यहाँ के विद्यालय-महा-विद्यालय-विश्वविद्यालय (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संगीत एवं मंच कला संकाय आदि) तथा बनारस घराने के संगीत उपासक संगीत के प्रचार-प्रसार में सेवारत हैं तो दूसरी ओर यहाँ के मन्दिरों में फूलती-फलती संगीत परंपरा भी अपते नवीन कायाकल्प के साथ उभरकर सामने आयी है । श्री संकठमोचन मन्दिर में आयोजित कार्यक्रमों से तो हम परिचित ही हैं, काशी में ऐसे अनेक मन्दिर हैं जहाँ शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का नियमित आयोजन होता है और उन्हीं में से एक है—काशी की गोद में बसा डीजल रेल इन्जन कारखाने का शिवमंदिर आज जिसे उसके नूतन कलेवर में शिव-काली मंदिर के रूप मैं जाना जाता है । डीरेका मूलतः रेल के डीजल इन्जनों का निर्माण करने वाला एक औद्योगिक नगर है, परिवेश की दृष्टि से जिसे मशीन एवं इन्जीनियरिंग का एक नीरस संस्करण ही कह सकते हैं, उत्तरोत्तर सांगीतिक चेतना का एक अग्रणी केन्द्र बनता जा रहा है । यह डीरेका ही है जो इस शिव-काली मंदिर के प्रांगण में शारदीय नौरात्र के अवसर पर प्रतिवर्ष संगीत के राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम आयोजित करता आ रहा है और अब, संगीत की उसी चेतना को गतिमान करने के उद्देश्य से इस वर्ष से संगीत की यह पत्रिका भी प्रकाशित करने जा रहा है ।

संगीत गोष्ठियों में सदैव ही यह उद्धृत किया जाता है कि 'कला के बिना शास्त्र लंगड़ा तथा शास्त्र के बिना कला अन्धी है' जो एक निर्विवाद सत्य है । इस कथन से दो बातें स्पष्ट होती हैं—एक तो यह कि कला और शास्त्र एक दूसरे से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध हैं दूसरे यह कि किसी कला को समझने के लिए जिस नेत्र की आवश्यकता होती है वह है, उसका शास्त्र । संगीत के साथ भी ठीक यही चरितार्थ होता है । अतः संगीत के प्रसंग में हम यह कह सकते हैं कि जितने परिमाण में हम संगीत के शास्त्र को समझेंगे, उसके ज्ञान-विज्ञान को समझेंगे उतने ही परिमाण में हम संगीत को समझ पायेंगे और जितने परिमाण में हम संगीत को समझ पायेंगे उतने ही परिमाण में सम्यक् दृष्टिकोण एवं सजगता के साथ संगीत का रसास्वादन भी कर पायेंगे । शिव-काली मंदिर के तत्वावधान में 'नादार्चन' की यह प्रस्तुति अवधारणा के इसी आलोक में, संगीत को उसके सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखने-समझने की दिशा में एक आरम्भिक एवं लघु विनम्र प्रयास है ।

विषयगत उल्लेख—नादार्चन 'प्रवेशांक' की लेखमाला का शुभारम्भ शिव-काली मंदिर संगीत समिति के प्रथम

संरक्षक तथा हमारे प्रेरक स्रोत ब्रह्मलीन अनन्त श्री बंगाली बाबा के जीवन-परिचय से किया गया है। अन्य सभी लेख संगीत विषय से सम्बद्ध हैं। इन निबन्धों के माध्यम से एक ओर तो शास्त्रीय संगीत के स्वरूपगत ढाँचे को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है वहीं दूसरी ओर भारतीय संगीत की मूल चेतना को भी रेखांकित किया गया है क्योंकि जब तक हमारे अन्तः में यह बात भली भाँति बैठ नहीं जाती कि हमारे संगीत की 'आत्मा' क्या है तब तक हम संगीत के बोध से अभिज्ञ होकर भी उसके वास्तविक सौन्दर्य-बोध से अनभिज्ञ ही रह जायेंगे और 'संगीत कला' की चरम अनुभूति 'रसो वै सः' से भी वंचित रह जायेंगे। हमारे संगीत की चेतना का उत्स 'ब्रह्म' है तभी तो इसे नादब्रह्म कहा गया, स्वरब्रह्म कहा गया। इसकी उत्पत्ति वेद (सामवेद) से कही गयी और उसी के अनुरूप भगवान् कृष्ण ने इसका माहात्म्य बताते हुए 'वेदानां सामवेदोऽस्मि' स्वीकार किया। यह वहीं संगीत है जो देवताओं को भी प्रिय है—'गीतेन प्रीयते देवः', योगिराज कृष्ण, ब्रह्मा तथा सरस्वती आदि सभी को इससे अनुराग है—'गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशंगतः। सामगीतिरतोब्रह्मा वीणासक्तासरस्वती'। आध्यात्मिक, धार्मिक एवं दार्शनिक भित्ति पर खड़ी, यही हमारे संगीत की मूल चेतना है। मेरी समझ से भारतीय संगीत में पैठ का यह पहला और अनिवार्य चरण प्रतीत होता है इसीलिए इस धारणा की प्रभावी अभिव्यक्ति के लिए प्रकारान्तर से हमारे लेखों में इसे विशेष स्थान दिया गया है।

यद्यपि संगीत के इस लघु प्रकाशन का आरम्भ मूल रूप से संगीत के जिज्ञासु श्रोताओं को ध्यान में रखकर किया गया है किन्तु संगीत के प्रयोक्ताओं के लिए भी यह कम महत्वपूर्ण नहीं होगा क्योंकि भाव-संप्रेषण के परिप्रेक्ष्य में प्रयोक्ता एवं श्रोता का भेद स्वतः ही समाप्त हो जाता है वहाँ तो श्रोता प्रयोक्ता के लिए तथा प्रयोक्ता श्रोता के लिए हो जाता है। इसके अतिरिक्त पत्रिका में जिस समग्र दृष्टि से विषयों का चयन किया गया है, यह संगीत के विद्यार्थियों शिक्षकों, समालोचकों तथा आयोजकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है।

अपनी कोटि के एक नये प्रयास और उसमें भी समय की कठिन सीमाओं के कारण 'नादार्चन' के इस अंक में अनेक त्रुटियाँ संभाव्य हैं। इसे हमारी विवशता समझते हुए पाठक क्षमा करेंगे। साथ ही यह निवेदन भी करना चाहूँगा कि इस सम्बन्ध में आप मुझे अपना अमूल्य परामर्श प्रदान करने की कृपा करेंगे ताकि नादार्चन के भावी अंकों में इन त्रुटियों का सुधार किया जा सके।

आभार-निवेदन—इतने अल्प समय में पत्रिका को यह स्वरूप देना मेरी शक्ति-सामर्थ्य के सर्वथा बाहर का काम था। इसे मैं प्रभु की असीम अनुकम्पा मानता हूँ और उस सर्वशक्तिमान को बारम्बार नमन करता हूँ। मैं ब्रह्मलीन पू० बंगाली बाबा तथा उन पू० गुरूजनों को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा तथा प्रसाद से ही इस ज्ञान-यज्ञ की पूर्णाहुति 'नादार्चन' के रूप में हुई। पत्रिका के संस्थापक भ्रातृ-तुल्य श्री दिवाकर पाठक को प्रणाम करता हूँ जिनकी प्रेरणा से ही मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ तथा जिन्होंने मनसा-वाचा-कर्मणा मुझे सम्पादन कार्य के लिए पोत्साहित किया। मैं उन सभी गुरूजनों-विद्वानों के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इतने अल्प समय में भी अपने सारगर्भित लेख प्रदान किये। इस अवसर पर मैं अपने उन विद्वानों से क्षमा-प्रार्थी हूँ जिनसे समयाभाव के कारण प्रस्तुत अंक के लिए लेख-सामग्री न ले सका। समय-समय पर सम्पादकीय विचार विमर्श से सहभागिता तथा उत्साहवर्धन के लिए मैं श्रद्धेया डॉ० (श्रीमती) विमला मुसलागवाँकर का आभार व्यक्त करता हूँ। विम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से जुड़े मेरे एक निष्ठ सहयोगी एवं इस पत्रिका के सह सम्पादक भाई प्रमोद पाठक को अपनी शुभकामनाएँ तथा धन्यवाद देता हूँ। श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह तथा श्री कमला सिंह को उनके व्यवस्था संबन्धी सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ। चि० अजय सिंह ने लेखकों से सम्पर्क-सूत्र के रूप में अपनी जो सेवाएँ अर्पित की उसके लिए उन्हें आशीर्वाद देता हूँ। प्रेस-कापी तैयार कराने में श्रीमती सत्यावती उपाध्यय (मेरी पत्नी) के सहयोग के लिए धन्यवाद देता हूँ।

प्रकाशन की व्यवस्था के लिए शिव-काली मन्दिर संगीत समिति को धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ। 'नादार्चन' के सफल मुद्रण के लिए 'खण्डेलवाल प्रेस' तथा 'जयभारत प्रिन्टिंग प्रेस' दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

बाराणसी, दि० 5 अक्टूबर, 1992

—आदिनाथ उपाध्याय

प्रयोगात्मक कलाएँ : प्रयोक्ता और प्रेक्षक का अन्तःसम्बन्ध

—अनिल बिहारी ब्योहार

कलाओं में सामान्य रूप से जीवन अथवा 'लोक'[1] का ही अनुकरण होता है। जीवन की घटनाओं से मनुष्य को सुख या दुःख की अनुभूति होती है, पर इन्हीं घटनाओं अथवा इनके कारणरूप भावों का जब कला के द्वारा प्रस्तुतीकरण होता है, तब ये घटनायें और भाव व्यक्तिगत न होकर 'साधारणीकृत'[2] हो जाते हैं और इसी कारण कलाएँ मनुष्य को लौकिक सुख-दुःख से परे आनन्द के स्तर तक ले जाने में समर्थ होती हैं। इसीलिए इस आनन्द को अलौकिक कहा गया है। कलाओं से प्राप्त होने वाला यही आनन्द प्रयोक्ता और प्रेक्षक के अन्तःसम्बन्ध का केन्द्रबिन्दु है। प्रयोक्ता अपनी कृति के माध्यम से इस आनन्द की अभिव्यञ्जना करते हुए न केवल स्वयं आनन्दानुभूति करता है, बल्कि प्रेक्षकों को भी उस आनन्द की प्राप्ति कराता है।

आज जिन कलाओं को ललित कला के नाम से जाना जाता है, उनमें कलात्मक अभिव्यञ्जना प्रमुख रूप से श्रव्य और दृश्य इन दो ही प्रकारों की होती है। श्रोत्र और नेत्र ये दो ज्ञानेन्द्रियाँ कलात्मक ज्ञान का प्रत्यय कराती हैं। चित्र, मूर्ति अथवा वास्तुशिल्प जैसी कलाओं की अभिव्यञ्जना दृश्य होती है और काव्य की अभिव्यञ्जना श्रव्य होती है। संगीत में नृत्य का भी समावेश होने से संगीत की अभिव्यञ्जना श्रव्य एवं दृश्य दोनों ही होती है। नाट्य में क्योंकि सभी कलाओं का समावेश होता है, अतः उसकी अभिव्यञ्जना भी श्रव्य एवं दृश्य दोनों ही प्रकार की होती है।

कलात्मक अभिव्यंजना के सन्दर्भ में एक और पक्ष भी विचारणीय है। यूँ तो दृश्य एवं श्रव्य इन दोनों ही प्रकार की कलाओं की अभिव्यंजना के लिए किसी न किसी रूप में 'देश'[3] एवं 'काल'[4] की आवश्यकता होती है, परन्तु दृश्य कलाओं में कलात्मक अभिव्यक्ति का आधार प्रमुख रूप से देश ही होता है। इतना ही नहीं, प्रत्येक कलाकृति के अन्तर्गत पायी जाने वाली विविधता भी देश ही पर अवलम्बित रहती है। उदाहरणार्थ रंगों का भेद, गहराई, उभार, चौड़ाई, ऊँचाई, विस्तार आदि जिन विविधताओं के द्वारा चित्र अथवा वास्तुशिल्प की अभिव्यक्ति होती है, उनके लिए देश अपरिहार्य है।

श्रव्य कलाओं की अभिव्यंजना का प्रमुख आधार काल होता है, क्योंकि श्रवण का विषय ध्वनि है, जिसकी अभिव्यक्ति या अनुभूति काल की क्रमिकता में होती है। किसी क्षण विशेष में हमारे कानों को जो ध्वनि या ध्वनियों का समुच्चय सुनाई देता है, वह उत्पन्न होते ही उसी क्षण नष्ट भी हो जाता है। बाद में उसकी स्मृति मात्र ही शेष रहती है तथा अगले-अगले क्षणों में उत्पन्न होने वाली ध्वनियों एवं उनकी स्मृतियों के साथ पूर्व-पूर्व की ध्वनियों की स्मृतियों का मेल करते हुए हम श्रव्य कलाकृति की किसी इकाई तथा इन इकाइयों की स्मृतियों के माध्यम से समूची कलाकृति से आनन्द प्राप्त करते हैं। ध्वनि सम्बन्धी समस्त विविधताओं, जैसे तारता, तीव्रता गुण, कालमान, घनता आदि की अभिव्यक्ति के लिए कालरूपी आधार की आवश्यकता होती है। अर्थात् किसी क्षणविशेष की ध्वनि दूसरे क्षणविशेष की ध्वनि से या तो भौतिक रूप में ही भिन्न होती है अथवा उसके प्रयोग का सन्दर्भ भिन्न होता है। ध्वनि सम्बन्धी उक्त विविधताओं के द्वारा ही श्रव्य कलाकृति की रचना होती है तथा इन विविधताओं को एक ही क्षण में युगपत् नहीं, अपितु काल की क्रमिकता में ही व्यक्त किया जा सकता है। इसी कारण काल श्रव्य कलाकृतियों के लिए आधार के रूप में कार्य करता है।

जहाँ तक नाट्य और नृत्य का प्रश्न है, इन कलाओं के श्रव्य अंश के लिए तो काल ही आधार का कार्य करता है, परन्तु दृश्य अंश के लिए भी देश और काल दोनों ही आधार का कार्य करते हैं। कारण यह है कि इन कलाओं

की दृश्यगत अभिव्यक्ति किसी क्षणविशेष तक सीमित नहीं रहती। अपेक्षाकृत विस्तृत देश एवं काल की इनमें आवश्यकता होती है। अलग-अलग क्षणों में पायी जाने वाली देशगत भिन्नताओं को काल की क्रमिकता में प्रस्तुत किया जाता है। देश के साथ-साथ काल पर भी आधारित होने के कारण नाट्य और नृत्यगत अभिव्यक्ति चित्र और वास्तुशिल्प की तरह अचल न होकर चल होती है, किन्तु कलाकृति स्थायी न होकर अस्थायी होती है। इस कारण देशगत विविधता के द्वारा काल की क्रमिकता में कलाकृति का निर्माण होता चलता है, किन्तु अन्त में कलाकृति शेष नहीं रहती। उपस्थित प्रेक्षकों के चित्त में कलाकृतिजन्य संस्कार ही शेष रह जाते हैं। यदि प्रेक्षकों को कलात्मक आनन्द फिर से प्राप्त करना हो, तो कलाकृति के पुनर्निर्माण की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ नृत्य अथवा नाट्य का कोई कार्यक्रम प्रेक्षकों को आनन्दविभोर कर देता है तथा वे प्रेक्षक अथवा उनसे भिन्न प्रेक्षक भी उस कार्यक्रम से पुनः आनन्द प्राप्त करना चाहते है, तो यह स्पष्ट ही है कि कलाकार को पुनः वह कार्यक्रम प्रस्तुत करना होगा और ऐसे कार्यक्रम में समय भी लगभग उतना ही लगेगा, जितना की पहली बार लगा था। श्रव्य होने के कारण यही बात गायन और वादन पर भी लागू होती है।

उल्लेखनीय है कि नाट्य सम्बन्धी किसी एक कार्यक्रम को जब बार-बार प्रस्तुत करना होता है, तो प्रत्येक बार कार्यक्रम में कुछ न कुछ भिन्नता अथवा नयापन पैदा हो जाता है। बहुत कुछ पूर्व अभ्यास पर अवलम्बित एवं पूर्व नियोजित होने पर भी प्रत्येक प्रस्तुति में कलाकार की सर्जना तात्कालिक होती है। एक प्रकार से कलाकार की परीक्षा प्रस्तुतीकरण के समय तुरन्त हो जाती है। इस कारण इन कलाओं को प्रयोगात्मक कला कहा जाता है।

जहाँ तक प्रयोगात्मक कलाओं में कलाकार और प्रेक्षक के सम्बन्ध का प्रश्न है, इन कलाओं की स्थिति कुछ विशिष्ट है। चित्र और वास्तुशिल्प में तो सर्जना से भिन्न देश एवं काल में प्रेक्षक कलाकृति से आनन्द प्राप्त कर सकता है, परन्तु प्रयोगात्मक कलाओं में विशेष बात यह है कि जिस देश एवं काल में कलाकृतिकी सर्जना होती है, आनन्द प्राप्त करने के लिए प्रेक्षक को उस देश-काल में उपस्थित होना आवश्यक होता है। अर्थात् प्रेक्षक का कलाकृति के साथ-साथ कलाकार से भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। यहाँ ऑडियो-विजुअल उपकरणों द्वारा रिकार्डेड कार्यक्रम हमारे विचार-क्षेत्र में नहीं आते, क्योंकि ऐसे कार्यक्रम स्वयं में कलात्मक प्रयोग नहीं कहे जा सकते, किसी कलात्मक प्रयोग की रिकार्डिंग मात्र होते हैं। यद्यपि रिकार्डेड कार्यक्रमों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता, तथापि ऐसे कार्यक्रमों में नितनवीनता की कोई गुंजाइश नहीं होती। रेडियो और टी० वी० द्वारा प्रसारित किये जाने वाले लाइव प्रोग्राम में अवश्य यह सम्भव होता है कि प्रेक्षक का भिन्न देश में स्थित कलाकार के साथ इन उपकरणों के माध्यम से प्रत्यक्ष जैसा सम्बन्ध स्थापित हो जाए, परन्तु इस सम्बन्ध को वास्तव में प्रत्यक्ष सम्बन्ध किसी प्रकार भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रेक्षक और कलाकार के बीच अन्तः क्रिया की कोई सम्भावना नहीं होती।

कलाकार को सृष्टिकर्त्ता, ब्रह्मा कहा जाता है, क्योंकि ब्रह्मा के समान उसकी भी एक सृष्टि होती है। और यह सृष्टि है उनकी कलाकृति, जिसके माध्यम से वह प्रेक्षक के साथ जुड़कर उसे आनन्द प्रदान करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कलाओं में जीवन का अनुकरण होता है। अतः कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि जीवन के प्रति उसकी संवेदनशीलता, अनुभूति और कल्पना सबल हो। स्वयं को जीवन से तटस्थ रखते हुए वह उसके साथ जितना अधिक तादात्म्य स्थापित कर लेता है, उसकी अभिव्यक्ति का प्रभाव भी उतना ही व्यापक एवं सूक्ष्म होता है। कल्पना की उड़ान होते हुए भी जो कला जीवन के यथार्थ से जितनी अधिक जुड़ी रह पाती है, वह उतनी ही अधिक प्रभावशाली और स्थायी होती है, क्योंकि प्रेक्षक भी जीवन के अपने अनुभवों के आधार पर कला से आनन्द प्राप्त करता है। इस दृष्टि से कलाकार की उत्कृष्टता मानव जीवन के समग्र दर्शन पर अवलम्बित है।

कलाकृति की कल्पना के बाद दूसरा स्तर उसकी अभिव्यञ्जना का है। इसे उसका तकनीकी पहलू भी कह सकते हैं। अपनी कल्पना को कलात्मक अभिव्यक्ति का रूप प्रदान

करने के लिए कलाकार को कुछ उपकरणों के समुचित उपयोग में निष्णात होने की आवश्यकता होती है। प्रयोगात्मक कलाओं में यह अभिव्यक्ति कलाकार अपने शरीर के विभिन्न अंगों और वाद्यों के माध्यम से करता है। अंगों में विकृति आ जाने पर सम्भव है कि कलाकार की कल्पना तो सुन्दर एवं सशक्त हो, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति करने में वह समर्थ न हो। बौद्धिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार की क्षमतायें किसी स्तर तक सीमित होती हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि सतत अभ्यास एवं उचित दिशा-निर्देशन के द्वारा इन क्षमताओं का विकास किया जा सकता है। शास्त्र ग्रन्थों में वाग्गेयकार, शरीर, कण्ठ, एवं हस्त के जिन गुण-दोषों का निरूपण किया गया है[1] वे कलाकार की उक्त दोनों ही प्रकार की क्षमताओं से संयुक्त रूप से सम्बद्ध हैं।

कल्पना और अभिव्यंजना के बाद अब बात आती है प्रस्तुति के समय के वातावरण की, जिसका निर्माण करनेवाला प्रमुख अंग है प्रेक्षक यानी श्रोता और दर्शक। प्रेक्षक के लिए शास्त्रीय भाषा में 'सहृदय'[5] होना आवश्यक बताया गया है। कलाकार की कल्पना और अभिव्यंजना इस पक्ष से भी प्रभावित होती है। प्रयोगात्मक कलाओं में कलाकार का प्रेक्षक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। कलाकार प्रेक्षकों को आनन्द की अनुभूति करवाता है तथा उनकी प्रतिक्रिया से स्वयं भी प्रभावित होता रहता है। अच्छे से अच्छे कलाकार की अभिव्यक्ति भी सहृदय प्रेक्षकों के अभाव में सार्थक नहीं हो पाती। यद्यपि कलात्मक प्रयोग से स्वयं कलाकार को भी आनन्दलाभ होता है, तथापि सर्जना के क्षणों में योग्य प्रेक्षकों की उपस्थिति तथा उनकी प्रशंसापूर्ण प्रतिक्रिया कलाकार को उत्तम सर्जना के लिए प्रेरित करती है। मर्मज्ञ प्रेक्षकों की आनन्दात्मक प्रतिक्रिया से प्रेरणा पाकर वह नयी-नयी भाव-सृष्टि करता है। प्रेक्षकों को आनन्दविभोर कर देना उसका चरमलक्ष्य होता है। अभिप्राय यह है कि प्रयोगात्मक कलाओं में प्रयोग की सफलता के लिए एक ओर तो यह आवश्यक है कि कलाकार अपनी कला में दक्ष हो तथा दूसरी ओर यह भी आवश्यक है कि प्रेक्षक केवल स्थूल दृष्टि से देखने और सुननेवाला न हो। यानी कलात्मक आनन्द के लिए प्रेक्षक को सहृदय होना चाहिए। प्रेक्षक की अनुभूति कलाकार की कल्पना के जितने अधिक निकट होगी, उतना ही उस प्रयोग-प्रस्तुति को सफल माना जाएगा।

कला के माध्यम से मिलनेवाला आनन्द ही वह केन्द्र-बिन्दु है, जिस पर कलाकार और प्रेक्षक एक-दूसरे से मिलने का प्रयत्न करते हैं। इस दिशा में आगे बढ़ने का प्रयास दोनों को ही करना होता है। प्रयोगात्मक कलाओं में इसके लिए सामान्य रूप से कलाकार और प्रेक्षक में प्रत्यक्ष सम्बन्ध अपेक्षित होता है, परन्तु आधुनिक युग में विकसित हुए ऑडियो–विजुअल वैज्ञानिक उपकरणों ने कलाकार और प्रेक्षक के इस सम्बन्ध को काफी हद तक शिथिल बना दिया है। पहले यह बात नहीं थी। कलाकार के मन में पहले से ही यह स्पष्ट होता था कि उसे किस देश और काल के किन प्रेक्षकों के लिए अपनी कला का प्रदर्शन करता है। उक्त उपकरणों की सहायता से एक देश-काल में की गयी कलात्मक अभिव्यक्ति दूसरे देश-काल में स्थित प्रेक्षकों तक पहुँच तो जाती है, किन्तु प्रेक्षकों के सामने न रहने के कारण उनकी प्रतिक्रिया कलाकार पर सर्जना की दृष्टि से कोई प्रभाव नहीं डाल पाती। कलाकार की अभिव्यंजना होती है अनामी प्रेक्षक के लिए और कलाकार भी कभी-कभी प्रेक्षक के लिए अनामी हो जाता है। दैनिक जीवन के विभिन्न कार्यों में लगे रहते हुए प्रेक्षक जब इन उपकरणों के माध्यम से कला का आनन्द उठाना चाहता है, तो उचित वातावरण के अभाव में प्रेक्षक का, कलाकार की कल्पना और अभिव्यंजना दोनों से अपेक्षित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। इन उपकरणों के माध्यम से कला का आनन्द उठाने के लिए प्रेक्षक यदि एकचित्त होकर भी बैठे, तो भी वैसा वातावरण नहीं बन पाता, जैसा सहृदय प्रेक्षकों की सभा में कलाकार के सामने बैठकर आनन्द लेते समय होता है। यही कारण है कि हर मर्मज्ञ प्रेक्षक की यह ललक होती है कि वह कलाकार के सम्मुख प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होकर उसकी कला का आनन्द ले।

वस्तुतः इन वैज्ञानिक उपकरणों के माध्यम से कलाकार की सर्जना प्रेक्षक तक अपने मूल रूप में नहीं पहुँचती। यह सर्जना उपकरणों के द्वारा जब पुनः प्रेषित या प्रसारित की जाती है, तो आमने-सामने न होने के कारण कलाकार और प्रेक्षक कला की दृष्टि से किसी एक स्तर पर आकर परस्पर

तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाते। दोनों के बीच किसी प्रकार का अन्तःसम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता। आज स्थिति यह है कि कलाओं के क्षेत्र में इन उपकरणों के उपयोग को नकारा नहीं जा सकता। इसके विपरीत भविष्य में इनका और भी अधिक विकास और प्रसार होगा, पर यह भी सत्य है कि इन उपकरणों के उपयोग की अपनी एक सीमा है। कलाकार और प्रेक्षक दोनों को ही इस सीमा को पहचानते हुए एक-दूसरे के निकट आने का प्रयास करना चाहिए। उपकरणाश्रित अभिव्यक्ति से उतनी ही अपेक्षाएँ की जानी चाहिए, जितनी उसकी सीमा है। ये उपकरण देश और काल का अतिक्रमण करते हुए कलाकार और प्रेक्षक में सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं, पर यह सम्बन्ध सहज नहीं, अपितु कृत्रिम ही होगा। जब संस्कारित प्रेक्षक ही उपकरणाश्रित अभिव्यक्ति से अपेक्षित आनन्द प्राप्त नहीं कर पाता, तो सामान्य प्रेक्षक से ऐसी अपेक्षा कैसे की जा सकती है?

यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि वह कला ही क्या जो सामान्य प्रेक्षक को प्रभावित न कर सके अथवा जिससे आनन्द उठाने के लिए विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता हो। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि अपने बौद्धिक–मानसिक स्तर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक निजी परिवेश होता है। लोक में प्रत्येक व्यक्ति की कल्पना और अनुभूति भी पृथक्-पृथक् होती है। अभिप्राय यह है कि कला कलाकार की अपनी कल्पना और प्रक्षक की अनुभूति पर आश्रित होती है। इन दोनों के बीच में होती है अभिव्यंजना। व्यक्तिगत कल्पना और तकनीकी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक कलाकार अभिव्यंजना के लिए न केवल भिन्न-भिन्न माध्यमों का चयन करता है, बल्कि माध्यम में समानता होने पर भी प्रत्येक कलाकार की अभिव्यंजना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। एक ओर व्यक्तिगत कल्पना और दूसरी ओर व्यक्तिगत अनुभूति की स्थिति में केवल अभिव्यंजना के माध्यम से कलाकार और प्रेक्षक के मध्य सम्बन्ध स्थापित होता है। कलात्मक अनुभूति की दृष्टि से तो प्रेक्षक की कल्पना का कलाकार की कल्पना के समकक्ष होना अपेक्षित है ही, साथ ही माध्यम के प्रतीकात्मक अर्थ से भी उसका परिचय होना चाहिए।

अतः यह कहा जा सकता है कि शास्त्रीय कलाओं से आनन्द का आस्वादन प्राप्त करने के लिए किसी सीमा तक प्रेक्षक का प्रशिक्षण होना चाहिए। पहले प्रशिक्षण का यह कार्य मर्मज्ञ प्रेक्षकों की सभा में बैठने से सहज ही हो जाया करता था। आज नवीन उपकरणों के प्रचार-प्रसार के कारण संगीत और नाट्य सर्वसाधारण के लिए दुर्लभ तो अवश्य नहीं रह गये हैं, पर मर्मज्ञ प्रेक्षकों की सभा में बैठकर देखने-सुनने का अवसर बहुत कम लोगों को प्राप्त होता है। वैज्ञानिक उपकरणों का उपयोग इतना अधिक बढ़ता जा रहा है कि उसको देखते हुए यह विचारणीय है कि विशेष रूप से प्रयोगात्मक कलाओं में कलाकार और प्रेक्षक के अन्तःसम्बन्ध को प्रगाढ़ बनाने की दिशा में कुछ नये प्रयास किये जाएँ। इसके लिए एक ओर तो ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जाना चाहिए, जिससे अधिक से अधिक लोगों को कार्यक्रमों में प्रत्यक्ष उपस्थित होकर आनन्द उठाने का अवसर मिल सके तथा दूसरी ओर कला के विभिन्न माध्यमों की सीमा एवं तकनीकी पहलुओं के प्रतीकात्मक अर्थों से परिचित कराने के लिए कोई मार्ग निकाला जाना चाहिए। इससे प्रेक्षकों के एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जा सकेगा, जो कलाओं के तकनीकी पहलुओं को चाहे न भी समझे, पर कलाओं का आनन्द उठाने में समर्थ हो। इससे कलाकार और प्रेक्षक दोनों ही पक्षों की दृष्टि से कला के स्तर को उठाने में समुचित सहायता प्राप्त होगी; क्योंकि प्रत्येक कलाकार को अपनी कला की परख के लिए अच्छे प्रेक्षकों की अपेक्षा रहती है।

टिप्पणियाँ

1—लोक से हमारा अभिप्राय तीनों लोकों के अर्थ में संपूर्ण सृष्टि से है।

2—साधारणीकरण दो अवस्थाओं के बीच की एक ऐसी विलक्षण अवस्था है, जिसमें न तो यह कहा जा सकता है कि 'दुःख या सुख है' और न यही कि 'दुःख या सुख नहीं है।' ऐसी अवस्था में पहुँचने पर ही प्रेक्षक को अलौकिक आनन्द अर्थात् रस की अनुभूति होती है।

3—देश (स्पेस्) शब्द का प्रयोग यहाँ तात्विक दृष्टि से व्यापक अर्थ में किया गया है। सत्तावान् प्रत्येक पदार्थ की अभिव्यक्ति के लिए देश अनिवार्य आधार है। पदार्थ के जो तीन आयाम होते हैं, वे भी देश के माध्यम से ही अभिव्यक्त होते हैं।

4—देश के साथ काल का भी यहाँ व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है। सृष्टि की समस्त क्रियाओं अथवा गतिशीलता की अभिव्यक्ति कालाश्रित ही होती है। सृष्टि के समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से गतिशील होते हैं। इस कारण देश के साथ काल भी समस्त पदार्थों के आधार का कार्य करता है।

5—सहृदय शब्द का अर्थ यहाँ रसिक प्रेक्षक है। संवेदना, कल्पना और अनुभूति की दृष्टि से जो प्रेक्षक कलाकार के समान हृदय वाला होता है, उसे सहृदय कहा जाता है। जीवन की संवेदना के अनुसार कलात्मक सर्जना के समय जैसी अनुभूति कलाकार की होती है, कलात्मक संवेदना के द्वारा प्रायः उसी स्तर की अनुभूति सहृदय प्रेक्षक की होती है।

•

साहित्य, संगीत या चाक्षुष प्रत्यक्ष वाली कला का ग्रहण अभ्यास से होता है, जिसको ज़िन्दगी ने तपाया-गलाया न हो, जिसे अपनी भाषा, अपने परिवेश की कलामयी प्रस्तुति के निजी स्वभाव की परख न हो, उसे रस का ग्रहण नहीं होता।....किन्तु रस-व्यापार में जो एक अपूर्वता है, उसकी भी बात सोची जानी चाहिए। अपूर्व शब्द हमारे यहाँ मीमांसाशास्त्र में आता है, प्रत्येक यज्ञानुष्ठान से कुछ अपूर्व मिलता है; यज्ञ में मन्त्र वही रहते हैं, वही होता, अध्वर्यु, उद्गाता रहते हैं; पूर्व विहित वही क्रम रहता है, वही आहवनीय द्रव्य रहता है। वैसी ही वेदी बनायी जाती है जैसे पहले बनती आयी है। सब कुछ पूर्वघटित है, पूर्व-ज्ञात है, तब भी कैसे अपूर्व प्राप्त होता है यह बात जल्दी समझ में नहीं आती। नाट्य को भी भरत मुनि ने चाक्षुषयज्ञ कहा तो कुछ ऐसा ही यहाँ भी होता है; वही वस्तु (कथानक) वे ही अभिनेता; वे ही नाट्य-मुद्राएँ, वे ही अहार्य, वे ही वाद्य-गीत प्रकार, वे ही प्रेक्षक भी कभी-कभी, तो भी बार-बार नया, बार-बार अपूर्व कुछ क्यों मिलता है? गहराई से इसकी मीमांसा करें तो लगेगा, पूर्वज्ञात से अपूर्व की सिद्धि में ही तो मज़ा है।.....

—विद्या निवास मिश्र

('रस सिद्धान्त' की भूमिका से)

ख़याल गायन के प्रमुख घराने एवं उनका तात्विक विश्लेषण

—आर० व्ही० कविमण्डन

नादार्चन के प्रवेशाङ्क में डॉ० आदिनाथ उपाध्याय ने "भारतीय संगीत में घराना की अवधारणा" शीर्षक से लेख प्रस्तुत करके उपर्युक्त विषय की पूर्व पीठिका प्रतिस्थापित कर दी है। इसी क्रम में अपनी जानकारी तथा सामर्थ्य के अनुसार ख़याल के प्रमुख घराने एवम् उनका तात्विक विश्लेषण प्रस्तुत करने की चेष्टा कर रहा हूँ।

सामान्य तौर पर ख़याल शैली का आविर्भाव बादशाह मुहम्मद शाह रंगीले (18 वीं शती का आरंभ काल) के समय से हुआ माना जाता है। तत्कालीन संगीतज्ञ सदारंग (नियामत खाँ) तथा अदारंग (फिरोज खाँ) को ख़याल शैली का जनक माना जाता है। उस युग में ख़याल शैली का एकमात्र घराना सदारंग-अदारंग का घराना था। कालान्तर में घराने के बड़े उस्तादों की कल्पना एवम् प्रतिभा से विभिन्न घरानों की उत्पत्ति होती चली गई।

ख़याल गायन के प्राचीनतम घरानों में ग्वालियर, दिल्ली तथा लखनऊ घराने का नाम लिखा जाता है। वर्तमान समय में जिन विभिन्न घरानों की चर्चा होती है सामान्यतया इस प्रकार हैं :—ग्वालियर घराना, जयपुर घराना, दिल्ली घराना, किराना घराना, पटियाला घराना, आगरा घराना, रंगीला घराना, सहसवान रामपुर घराना, अतरौली घराना, लखनऊ घराना, मेवाती घराना, भिंडी बाजार घराना, मनरंग घराना, गोखले घराना, श्याम चौरासी घराना, विष्णुपुर घराना, बनारस घराना आदि।

परन्तु इनमें से ग्वालियर, जयपुर, दिल्ली, किराना, पटियाला तथा आगरा घरानों को ख़याल गायन के क्षेत्र में विशेष स्थान प्राप्त है तथा अन्य घराने किसी न किसी रूप में इन्हीं घरानों की शाखा-प्रशाखा अथवा उपशाखा आदि के रूप में पल्लवित हुए हैं। वस्तुतः स्थान की सीमाओं के कारण इस लघु निबन्ध में इन्हीं प्रमुख घरानों की चर्चा की गयी है। इस विवशता के लिए पाठक क्षमा करेंगे।

किसी भी घराने का वैशिष्ट्य मुख्य रूप से निम्नलिखित शैलीगत विशेषताओं पर निर्भर हुआ करता है :—

(1) स्वरोच्चारण का ढंग,
(2) विशेष प्रकार के रागों का चयन,
(3) तालों का चयन,
(4) राग-विस्तार की शैली,
(5) बंदिशों के प्रकार,
(6) स्वर-ताल-पदादि के प्रयोग का पारस्परिक अनुपात,
(7) तान-क्रिया के विभिन्न प्रकार,
(8) लयकारी तथा बोल-बाँट आदि।

उपर्युक्त क्रियाओं के न्यूनाधिक अन्तर होने मात्र से नानाविध घरानों की सृष्टि किस प्रकार होती रही है, यह आगे, घरानों की चर्चा से स्पष्ट हो जायेगा।

ग्वालियर घराना :—

ख़याल गायन के क्षेत्रमें सर्वप्रमुख, प्राचीन तथा विशालतम घराना ग्वालियर घराना है। इस घराने के अनुयायिओं की संख्या संभवतः सर्वाधिक है। अष्टांग-योग पद्धति के समान ग्वालियर की अष्टांग गायकी प्रसिद्ध है, जिसके आठ अंग इस प्रकार बतलाये जाते हैं :— 1. आलाप, 2. शब्दालाप या बोलआलाप 3. बोलतान 4. विभिन्न प्रकार की तानें, 5. लयकारी, 6. गमक, 7. मीड तथा 8. मुर्की।

ग्वालियर घराने में कण्ठ-स्वर खुला, बुलन्द, जोरदार तथा आकार युक्त प्रयुक्त होता है। इस घराने में आवाज़ को दबाना, चुराना व छिपाना सर्वथा निषिद्ध है। तीनों सप्तकों में आवाज की गति समान रूप से तथा सहज-ढंग से होने के

लिए विशेष 'स्वर साधना' तथा 'खरज साधन' की शिक्षा ग्वालियर घराने में दी जाती है।

ग्वालियर घराने में प्रचलित, सम्पूर्ण तथा औडव-सम्पूर्ण रागों का प्रयोग विशेष रूप से होता है। स्थायी गायन से पूर्व 'पूर्वालाप' न करके सीधे ख़याल आरंभ किया जाता है। इस घराने के ख़याल ध्रुपद अंग के होते हैं। वेदाध्ययन-पद्धति के समान ख़याल का स्थायी तथा अन्तरा शुद्ध रूप में प्रस्तुत किया जाता है। बहुधा विलंबित खयाल की स्थायी तथा अन्तरा दो से तीन आवर्तनों तक का होता है, तथा जैसा गुरुमुख से प्राप्त हुआ है, ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है। ख़याल की लय अति विलम्बित न होकर सामान्य विलम्बित रहती है।

बार-बार सम पर स्थायी का मुखड़ा दिखलाते हुए सिलसिलेवार राग की बढ़त की जाती है, जिसमें बोल-आलाप या केवल 'आ'कार में आलाप तथा बहलावा प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार आगे बढ़ते हुए तार सप्तक के 'सा' पर पहुँच कर अन्तरे के मुखड़े को लेकर तार सप्तक में संचार किया जाता है। फिर अन्त में स्थायी के मुखड़े को दर्शाने के बाद क्रमशः बोलतान तथा नाना विध तानों की बौछार का क्रम आरंभ होता है।

ग्वालियर की तान स्पष्टता तथा बुलंदी के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की तानें दानेंदार तथा पल्लेदार होती हैं। सपाट तान, फिरत की तान, अलंकारिक तान, गमक की तान, जबड़े की तान तथा मट्ठी की तान आदि का प्रयोग इस घराने में विशेष रूप से होता है।

जयपुर घराना :—

जयपुर घराने में आवाज तैयार करने की अपनी स्वतंत्र शैली रही है। आवाज को शुद्ध रूप में 'आ'कार युक्त लगाना अनिवार्य होता है। आलाप गमक, मीड, अथवा तान आदि सभी प्रकारों में यह आकार शुद्ध रूप में बनाये रखना पड़ता है।

इस घराने में अप्रचलित या अछोप राग, कठिन राग, और जोड़-राग (मिश्र-राग) गाने की ओर विशेष झुकाव है। जैसे :—अड़ाना-बहार, ककुभ बिलावल, काफी कानड़ा, खट, खोकर, गौड मल्हार, जौनपुरी बहार, नन्द, नट बिहाग नट कामोद, बिहागड़ा, बसंत बहार, बसंत की केदार, रायसा कानड़ा, ललिता गौरी, सावनी, सूहा-सुग्राही, शुद्ध-नट, हेम कल्याण आदि।

जयपुर घराने में विलम्बित ख़याल की रचना के लिये बहुधा तीन ताल का प्रयोग होता है, जबकि अन्य घरानों में तीन ताल के विलम्बित ख़याल कम ही सुनाई पड़ते हैं। कभी-कभी झपताल, रूपक या आड़ाचारताल में भी विलंबित ख़याल गाये जाते हैं। ख़याल गायन के बीच इस घराने में लय बढ़ाने की अनुमति नहीं है, जैसा कि अन्य घरानों के कलाकार किया करते हैं। इस घराने में तिहाइयों की सख़्त मनाही है।

इस घराने की बंदिशें संक्षिप्त परन्तु आकर्षक होती हैं, अधिकांश कलाकार बंदिशों का स्थायी-अन्तरा पूर्ण रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं समझते, बल्कि सिर्फ स्थायी से ही काम चला लेते हैं।

स्थायी गाने के पश्चात् शुद्ध 'आकार' में आलाप आरंभ किया जाता है। चीज की बढ़त से राग की बढ़त अर्थात् बंदिश के अनुरूप राग-विस्तार किया जाता है। इस विस्तार में ग्रह, अंश, न्यासवादी, सम्वादी, अल्पत्व, बहुत्व आदि का विचारपूर्वक निर्वाह करते हुए तथा राग की शुद्धता कायम रखते हुए 'अस्ताई भरने' की क्रिया की जाती है। तत्पश्चात् बंदिश के बोलों के साथ थोड़ी द्रुत लय के आलाप किये जाते हैं जिनमें बीच-बीच में टप्पे के अंदाज की छोटी-छोटी तानें ली जाती हैं। जयपुर घराने के आलापों में टप्पे जैसी छोटी-छोटी परन्तु द्रुत लय की मुर्कियाँ एवं तानें लेने का प्रचलन है।

जयपुर घराना अपनी वक्र, बलपेंच युक्त तथा क्लिष्ट तानों के लिये विख्यात है। इस घराने में पल्लेदार, सपाट तथा लम्बी तानों का अभाव होता है। इस घराने में आड़ी लय के प्रयोग का बाहुल्य होता है, तथा ताल की प्रत्येक मात्रा पर आघात होता है। तानों के समापन पर सम पर आने की पद्धति अत्यंत आकर्षक होती है।

बिना श्वास तोड़े, एक ही श्वास में एक से अधिक आवर्तनों की आलापचारी इस घराने में दृष्टिगोचर होती है। इस घराने में विलंबित ठहराव युक्त आलाप तथा बोल-

तानों का अभाव दिखाई देता है। बिलंबित ख़याल प्रस्तुत करने के उपरान्त इस घराने में द्रुत ख़याल गाना अनिवार्य नहीं है। इस घराने में कोई भी राग बहुत ज्यादा देर तक गाया नहीं जाता।

दिल्ली घराना :—

तानरस खाँ का यह घराना ख़याल के विभिन्न प्रकार तथा तानों के विविध प्रकारों के लिये प्रसिद्ध है। यह घराना मूलतः सारंगियों का घराना है, अतः इस घराने की विलंबित बंदिशों में सूत, मीड, गमक और लहक विशेष रूप से दिखाई देती है। मध्य लय में भी सुरों का आपसी जोड़-तोड़ बेजोड़ होता है।

इस घराने में विलम्बित खयाल के लिये झूमरा, आड़ा चारताल, एकताल आदि तालों का प्रयोग होता है जबकि द्रुत खयाल के लिये त्रिताल, एकताल, रूपक आदि तालों का प्रयोग होता है।

इस घराने में ख़यालों के अनेक प्रकार हैं, तथा उनके बड़े ही विचित्र नाम भी हैं, जैसे :—कलगी-तुर्रा के ख़याल, खानापूरी के ख़याल, जनहरी के ख़याल, नालकी के ख़याल, पटरी के ख़याल, पालकी के ख़याल, तान-बंधान के ख़याल, सवारी के ख़याल, सेहरे-सुहाग के ख़याल, विलंबित के ख़याल, मध्यलय के ख़याल, द्रुत लय के ख़याल, आडी लय के ख़याल, ड्योढ़ी लय के खयाल, सवाई लय के ख़याल, बोल-बाँट के ख़याल, मौसमी रागों के ख़याल आदि।

ख़यालों के उपरोक्त प्रकार-भेद विभिन्न लय, रचना शैली तथा साहित्य आदि के आधार पर हुए हैं।

इसी प्रकार इस घराने में तानों के भी विभिन्न प्रकार और उनके नाम प्राप्त होते हैं, उदाहरणार्थ—अचक तान, एंच तान, कलगी बन्दतान, गमक की तान, गिरह गुलझट्टी तान, गदाधमाका तान, गोरख धंधा तान, गोता तान, चक्र-दार तान; चुना-चुनी की तान, जमजमे की तान, झंकार तान, झपट तान, तोड़-मरोड़ तान, झूलातान, झकोला तान, धक्का तान, फेंक तान, फंदा तान, बिजली कड़क तान, बादल गरज तान, बंद तान, बोल तान, बोल-बांट तान, सपाट तान, शेर दहाड़ तान, हाथी चिघ्घाड़ तान आदि।

तानों के विविध प्रकार उनकी स्वर-रचना पद्धति, आवाज़ के वजन में विभिन्नता आदि तत्वों पर निर्भर करते हैं। उपर्युक्त ख़याल तथा तान-प्रकारों के विषय में दिल्ली घराने के प्रतिनिधि गायकों को विस्तार से ज्ञान है, अतः उन्हें अपने घराने का यह वैशिष्ट्य अन्य संगीत रसिकों को सुलभ हो इस दिशा में प्रयत्न करने चाहिये।

किराना घराना :—

किराना घराना मूलतः बीनकारों का घराना है, अतः इस घराने में सुरीलेपन की ओर विशेष झुकाव है। इस घराने के ख़याल गायन में मधुर तथा कोमल प्रकृति की नज़ाकत भरी आवाज का प्रयोग होता है, जो सहज ही हृदय को छू जाती है।

किराना घराने की गायकी में बड़ी शान्ति तथा चैन-दारी है तथा यह घराना आलाप-प्रधान है। संभवतः इसी-लिये इस घराने में पूर्वांग प्रधान प्रचलित राग जैसे—दरबारी, मालकंस, तोड़ी, पूरिया, मारवा इत्यादि रागों का प्रचलन विशेष है।

चूँकि इस घराने में 'चीज़' की अपेक्षा 'राग' को विशेष महत्व दिया जाता है, अतः ऐसा देखा जाता है कि बहुधा इस घराने के गुणीजन बंदिश को पूर्णरूप से प्रस्तुत न कर केवल बंदिश के मुखड़े से ही काम चला लेते हैं।

इस घराने में अति विलम्बित लय का प्रयोग होता है तथा सिलसिलेवार एक-एक स्वर का विस्तार करते हुए आगे बढते हैं तथा राग का वातावरण भली प्रकार से अवतरित करते हैं। इस घराने के आलाप में मीड और लोच का काम अधिक होता है। ऐसा भी देखने में आता है कि इस घराने के कुछ गुणीजन लय तो अति विलम्बित कायम करते हैं। परन्तु आलाप चारी दुगुनी लय में करते हैं।

चूँकि इस घराने की गायकी का झुकाव सुरीलेपन की ओर अधिक है अतः इस घराने में लयकारी, बोलवाँट आदि का नितान्त अभाव होना स्वाभाविक ही है।

पटियाला घराना :—

यह घराना मूलतः सारंगी-वादकों का है। इस घराने के गायकों की आवाज मीठी तथा सुरीली होती है, जिसमें

गोलाई तथा चिकनापन होता है। आवाज़ में किसी प्रकार की कृत्रिमता नहीं होती तथा स्वाभाविक कण्ठ-स्वर का प्रयोग होता है। स्वर का झुकाव ठुमरी शैली की ओर अधिक होता है।

इस घराने में प्रचलित राग, जैसे—यमन, विहाग, जौनपुरी, मालकंस, बागेश्री आदि का प्रयोग होता है।

इस घराने की बंदिशें संक्षिप्त तथा कलापूर्ण होती हैं तथा राग की बढ़त चीज़ की बढ़त से होती है।

पटियाला घराने में ख़याल की लय विलंबित ही रहती है। सुरीलेपन के साथ आलाप, बोल आलाप, बोलतान तथा गमकों का खूब प्रयोग होता है। इस घराने के गायक विभिन्न छन्दों में 'सरगम' का प्रयोग करने में दक्ष होते हैं।

इस घराने में तैयारी के साथ-साथ कोमलता के भी दर्शन होते हैं। तानों में सुरीलेपन के साथ सफाई और तैयारी दृष्टिगोचर होती है। अतिद्रुतलय में संचार करने वाली सपाट तानों का प्रचुर प्रयोग होता है। इसके साथ ही अलंकारिक तानों वक्र तानों तथा विविध छन्दों की तानों का भी प्रयोग होता है। इस घराने के तान-पल्टे लय के अनुसार होते हैं।

पटियाला घराने में खयाल गायन के साथ तराने की गायकी में भी प्रवीणता देखी जाती है। इस घराने की गायकी पर पंजाब का टप्पा, सूफी बानी, कव्वाली तथा सिक्ख-शबद का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

आगरा घराना :—

मूलतः यह ध्रुपदियों का घराना है, अतः इस घराने के ख़याल पर ध्रुपद का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस घराने के गायक कण स्वरों का प्रयोग न करते हुए जोरदार, जोशदार और खुली परन्तु कृत्रिम लगने वाली आवाज का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार की कृत्रिम तथा जोरदार आवाज को "बाजखाई" की संज्ञा दी जाती है। टीप 'सा' (तार षड्ज) बहुधा 'री' कार युक्त होता है।

ख़याल-गान से पूर्व ध्रुपद में प्रयुक्त नोम्-तोम् की विस्तृत आलापचारी की जाती है। इस प्रकार के आलाप के बाद विलम्बित ख़याल न गाकर बहुधा सीधे मध्य लय का ख़याल आरम्भ करते हैं। वस्तुतः इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस घराने में विलम्बित ख़याल होते ही नहीं हैं।

आगरा घराने में प्रचलित तथा अप्रचलित दोनों ही प्रकार के रागों को गाने की प्रथा है। इस घराने में जय-जयवन्ती, रागेश्वरी, जोग, छायानट, रामकली, देसी, सूहा, सुघराई, भनखार, विहाग, गौड़ मल्हार, गौड़ सारंग, नट बिहाग आदि राग विशेष रूप से सुनाई पड़ते हैं।

आगरा घराने में दरसपिया, रंगीले पिया, सरस पिया, प्राणपिया, विनोदपिया सुजान तथा प्रेमपिया आदि वाग्गेय-कारों की रचनायें गाई जाती हैं।

इस घराने में लयकारी के साथ बोल अंग से विस्तार तथा बोल बाँट किया जाता है। इस घराने में बोलतानों में विशेष प्रवीणता दिखाई देती है। लय के विभिन्न दर्जे बराबर की तान, चौगुन की तान, अठगुन की तान, आड़ी लय आदि में अनेक प्रकार की तानें तथा बोलतानें की जाती हैं।

इस घराने में चीज़ की बढ़त से राग की बढ़त होती है। आकार और बोल आलाप दोनों ही प्रकार से विस्तार किया जाता है। स्थायी अथवा अंतरे की दूसरी पंक्ति को पहली पंक्ति के समान 'मुखड़ा बंदी' करके गाने की प्रथा इस घराने में है।

ताल की टेढ़ी-तिरछी जगहों से तानों की शुरुवात की जाती है। आगरा घराने में सपाट तान, जबड़े की तान, गमक की तान तथा छूट के विभिन्न प्रकार दिखायी देते हैं। इस घराने में बल पेंच युक्त तानें तथा अतिद्रुत तानों का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता है परन्तु स्थायी तथा अंतरे की तानें अलग ढंग की होती हैं।

इस घराने के अधिकांश गायक ध्रुपद, धमार, ख़याल, ठुमरी, दादरा आदि सभी शैलियों में दक्ष होते हैं।

अपनी क्षमता और सामर्थ्य के अनुसार मैंने ख़याल के प्रमुख घरानों का तात्विक विश्लेषण प्रस्तुत करने का

दु:साहस मात्र किया है, इस प्रस्तुति के माध्यम से घरोनों के प्रतिनिधि विशेषज्ञों से मेरा अनुरोध है कि वे अपने घरानों के वैशिष्ट्य को संगीत रसिकों एवं जिज्ञासुओं के समक्ष रखें, क्योंकि सही अर्थों में वे ही इस कार्य के अधिकारी है और वे इसे बेहतर ढंग से कर सकते हैं।

आज के युग में ध्वनि-मुद्रण तथा संचार माध्यमों का व्यापक उपयोग हो रहा है। रेडियो, दूरदर्शन, ग्रामोफोन रिकार्ड, आडियो तथा विडियो कैसेट्स, काम्पैक्ट डिस्क आदि इलेक्ट्रानिक साधनों के निरंतर बढ़ते उपयोग, तथा संगीत की संस्थागत शिक्षण-पद्धति आदि के फलस्वरूप घरानों की सीमा-रेखायें क्षीण होती जा रही हैं, घराने टूटते जा रहे हैं। आज कोई भी कलाकार अन्यान्य घरानों की विशेषताओं को जो उसकी प्रकृति तथा कण्ठ के लिये अनुकूल हो, अपना रहा है। घरानों के टूटने के क्रम में उन घरानों की विशेषताओं को लुप्त होने से बचाने की दिशा में यही एक उपाय है कि उन विशेषताओं को लिपिबद्ध करके सर्वसुलभ बनाने की दिशा में प्रयत्न किये जायें। हमारे संगीत के विकास में यह निश्चय ही सहायक सिद्ध होगा।

●

'घराना' हमारे संगीत की एक समृद्ध विरासत है। गुण-दोष तो सर्वत्र होते हैं और यहाँ भी हो सकते हैं किन्तु हमें गुणग्राही दृष्टि से इस विरासत का लाभ उठाना होगा। सर्वेक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि हमारे घरानेदार संगीतज्ञों के पास गायन-वादन की लुप्तप्राय अनेक विधाओं तथा इनकी बंदिशों का उत्कृष्ट संग्रह भरा पड़ा है। इसके अतिरिक्त इनके यहाँ गुरु-शिष्य के आदर्श सम्बन्धों पर आधारित संगीत-शिक्षण में एक कड़ा अनुशासन है, पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता हुआ संगीत-गुरुओं से प्राप्त शिक्षण का ठोस अनुभव तथा सँजोये हुए बहुमूल्य आप्त आदेश हैं। और यह सभी हमारे लिए ग्राह्य हैं, अनुकरणीय हैं।

—आदिनाथ उपाध्याय

('नादार्चन' संगीत वार्षिकी 1991)

'धातु'
संगीत में 'इण्टरडिसिप्लिनरी' अध्ययन का उदाहरण

—सुभद्रा चौधरी

भारतीय मनीषा ने जीवन को एक समग्र इकाई के रूप में देखा, जीवन के विभिन्न पक्षों की अनुभूति और अभिव्यक्ति एक अखंड अंगी के रूप में की और उसका अध्ययन, चिंतन खंडशः यानी टुकड़ों में बाँट कर या अलग-अलग स्वतंत्र इकाइयों के रूप में नहीं बल्कि एक शरीर में परस्पर अभिन्न रूप से जुड़े हुए अवयवों की तरह किया। यह दृष्टि सारी भारतीय विद्याओं, कलाओं, शास्त्रों, दर्शनों यानी ज्ञान के सभी क्षेत्रों में दिखाई देती है।

पिछले लगभग दो या तीन दशकों में पश्चिम से एक लहर आई 'इण्टरडिसिप्लिनरी' अध्ययन की जिसे भारत में 'आन्तरानुशासनिक' या 'अन्तः संबंधों' अथवा 'अन्तरवलम्बन' पर आधारित अध्ययन के रूप में समझने की कोशिश की गई। अंग्रेजी का यह शब्द अध्ययन की उस प्रणाली का सूचक है जिसमें पहले किसी विषय के विभिन्न पक्षों का एक दूसरे से स्वतंत्र या निरपेक्ष रूप में अध्ययन किया जाता है और फिर उन्हें परस्पर जोड़ कर मूल रूप बनाया जाता है। लेकिन यह शरीर के विभिन्न अंगों को काट कर अलग-अलग करके फिर उन्हें जोड़ कर शरीर बनाने जैसा है और भारतीय पद्धति के सर्वथा विपरीत है क्योंकि कटे अंगों को जोड़ कर अंगी यानी शरीर के स्वरूप को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

सामान्य रूप से किसी भी 'इण्टरडिसिप्लिनरी' अध्ययन का प्रमुख बिन्दु किसी विषय का ऐसा अध्ययन होना चाहिए जिसमें ज्ञान की विभिन्न शाखाओं का उपयोग करते हुए भी उस विषय का संपूर्ण, समग्र और समन्वित अध्ययन हो। प्रश्न यह है कि भारत में इस प्रकार के अध्ययन की कोई परंपरा रही है या नहीं ? जैसा शुरू में ही कहा जा चुका है भारतीय चिंतन का लक्ष्य जीवन का समग्र अध्ययन रहा है इसलिए ज्ञान की विभिन्न शाखाएँ एक दूसरे से संबद्ध रहीं। इस संदर्भ में प्रस्तुत लेख में संगीत के परंपरागत शास्त्रीय चिंतन में प्रयुक्त शब्द 'धातु' को लेकर कुछ विचार प्रस्तुत हैं।

जैसा कि सभी जानते हैं दैनिक जीवन में भी धातु शब्द बड़ा प्रचलित है। उदाहरण के लिए, सोना-चाँदी आदि धातुएँ, वात-पित्त-कफ आदि धातुएँ। इनके अलावा अन्य कई क्षेत्रों में भी इस शब्द का प्रयोग होता है। कोश के अनुसार 'धातु' शब्द के कई अर्थ हैं; जैसे—संघटक या मूलभाग, अवयव, मूल तत्त्व, मुख्य द्रव्य, शरीर के स्थिति विधायक तत्त्व, खनिज पदार्थ आदि।[1] हम जिन संदर्भों में इस शब्द पर विचार करेंगे उनमें संघटक या मूलभाग और शरीर के स्थिति विधायक तत्त्व प्रमुख रूप से संबद्ध होंगे। यहाँ मुख्य रूप से ज्ञान की उन दो शाखाओं के आधार पर चर्चा की जायगी जिनसे संगीत में 'धातु' शब्द का ग्रहण हुआ है और जिनके साथ वह सीधा जुड़ा हुआ है। ये हैं—व्याकरण और आयुर्वेद।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार हर शब्द का एक मूल भाग या संघटक होता है जिसका कोई निश्चित अर्थ होता है और जो उस मूलभाग से बनने वाले हर शब्द में कम-ज्यादा मात्रा में रहता है। यह मूलभाग व्याकरण में 'धातु' कहलाता है। जैसे—राग, रंग, रंजन, रंजनीय, उपरंजन आदि शब्दों की धातु 'रञ्ज्' है जिसका अर्थ है 'रँगना'। इसलिय इन सभी शब्दों में यह अर्थ किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। स्वयं 'धातु' शब्द 'धा' संघटक (धातु) से बनता है जिसके अर्थ हैं 'धारण करना' और 'पोषण करना'। व्याकरण में शब्दों के मूलभाग को धातु इसलिए कहा जाता है कि वे शब्दों में अर्थ को 'धारण' करती हैं। इस प्रकार 'धातु' शब्द का मूल अर्थ है धारण करना और वह इस शब्द का जहाँ भी प्रयोग हो वहाँ बना रहता है।

आयुर्वेद में मनुष्य के शरीर की रचना में धातु शब्द और उसकी धारणा का बड़ा महत्त्व है। शरीर में तीन

धातुएँ मानी गई हैं—वात, पित्त और कफ, जो शरीर के स्थितिविधायक तत्त्व हैं यानी शरीर के अस्तित्व को धारणा करते हैं। स्पष्ट है कि धारण करने के कारण ही इन्हें धातु कहा गया है।

संगीत के शास्त्रीय चिंतन में धातु की चर्चा मुख्य रूप से 'वाग्गेयकार', 'प्रबंध', 'शब्द' और तंत्रीवाद्यों की वादन-शैली के संदर्भ में हुई है। क्रम से इन पर विचार करेंगे।

जो 'वाक्' (शब्द या पद) और 'गेय' (स्वर) की रचना करता है उसे वाग्गेयकार कहा गया है।[2] मध्ययुग में गायकों द्वारा वाक् को ही 'मातु' और गेय को ही 'धातु' कहा जाता रहा है।[3] इस प्रकार जो धातु और मातु अर्थात् स्वर और पद से युक्त गीत की रचना करता है वह वाग्गेयकार है। वाग्गेयकार के इस लक्षण में आया हुआ धातु शब्द गेय यानी स्वरयोजना का सूचक है। यह सभी जानते हैं कि गीत में स्वर ही वह तत्त्व है जिसके कारण वह गीत कहलाता है और मुख्य रूप से अच्छी स्वरयोजना से ही कोई गीत ज्यादा प्रभावकारी बनता है। यह उल्लेखनीय है कि वाग्गेयकार के विभिन्न वर्ग भी धातु की उत्कृष्टता के आधार पर ही बनाए गए हैं।[4] इसलिए यह कहा जा सकता है कि स्वर-रचना ही गीत को धारण करती है। स्पष्ट है कि गीतात्मकता को धारण करने के कारण ही गीत की स्वर-रचना को धातु कहा गया है।

संगीत में ऐसी रचना को 'निबद्ध' कहा गया है जो 'धातु' और 'अंगों' से विशेष प्रकार से बँधी हो।[5] इसे शास्त्र में 'प्रबंध' और सामान्य रूप से गीत कहा जाता है। ऊपर वाग्गेयकार के द्वारा जिस रचना की चर्चा की गई वह शास्त्रीय भाषा में 'प्रबंध' भी कहलाता है। प्रबंध-रचना के दो मुख्य पक्ष हैं—एक तो उसके भाग[6] यानी खंड और दूसरा, उसकी पद-रचना में शब्दों के प्रकार। इनमें से पहले पक्ष को 'धातु' और दूसरे को 'अंग' के द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रबंध में कुल ४ या ५ खंड हो सकते हैं जिनके नाम हैं—उद्ग्राह, मेलायक, ध्रुव, आभोग और अन्तर।[7] यही प्रबंध की धातुएँ हैं। इनमें से कम से कम दो—उद्ग्राह और ध्रुव प्रबंध में अनिवार्य हैं। इसका सीधा आशय यह है कि धातु यानी खंडों के आधार पर ही प्रबंध का शरीर बनता है। यह ध्यान देने की बात है कि वर्तमान संगीत में भी किसी गेय रचना में कम से कम दो खंड ज़रूर होते हैं।

वाग्गेयकार के लक्षण में गेय यानी गीत की पूरी स्वर-रचना को धातु कहा गया और प्रबंध रचना में उसके खंडों को। दोनों ही जगह धातु शब्द गेय से संबंधित है लेकिन पहले में वह पूरे गीत की स्वर-योजना को सूचित करता है और दूसरे में उसके विभिन्न खंडों को। इतना ही अन्तर है।[8]

शास्त्र में अवनद्ध वाद्यों के प्रबंधों के खंडों के लिए भी उद्ग्राह आदि धातु नामों का प्रयोग हुआ है[9] लेकिन गेय प्रबंधों की धातुएँ स्वराश्रित हैं; यहाँ स्वराश्रित नहीं बल्कि पाट (अवनद्ध वाद्यों पर उत्पन्न किए जाने वाले तक, धिमि, किट आदि अक्षर) रचना के आधार पर बनने वाले खंड हैं।

यहाँ यह बताना ज़रूरी है कि प्रबंध की धातुओं की चर्चा में ग्रंथ-परंपरा में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जैसे वात, पित्त, कफ शरीर को धारण करने के कारण धातु कही जाती हैं उसी तरह प्रबंध के शरीर को धारण करने के कारण उद्ग्राह आदि भी धातु हैं।[10]

'शब्द' का साधारण अर्थ ध्वनि है लेकिन संगीतशास्त्र में कंठध्वनि को 'शब्द' कहा गया है। इसके मुख्य रूप से चार प्रकार कहे गये हैं जिनमें से तीन का वात, पित्त, कफ धातुओं से सीधा संबंध है। शरीर की जैसी प्रकृति हो यानी इन तीन धातुओं में से जिसकी प्रधानता हो उसके अनुसार ही कंठध्वनि का गुण भी होता है। आयुर्वेद के इस सिद्धांत के अनुसार कफ की प्रधानता से कंठध्वनि स्निग्ध, मधुर और कोमल होती है जो संगीत में 'खाहुल' कहलाती है। पित्त के प्रधान होने पर मन्द्र, मध्य, तार-इन तीनों स्थानों में घन (भरावदार), गम्भीर और मिल जाने वाली ध्वनि होती है जो 'नाराट' कही जाती है और वात की प्रमुखता से खोखली, कठोर, ऊँची और मोटी होती है जिसकी संज्ञा 'बोम्बक' है :[11] जो कंठध्वनि इनमें से किसी एक निश्चित वर्ग में नहीं रखी जा सकती यानी जिसमें इनमें से दो या ज्यादा के गुण दिखाई दें उसे 'मिश्र' के रूप में समझा जाता है।

यद्यपि वात आदि धातुएँ गायक की कंठध्वनि को सीधे धारण नहीं करतीं लेकिन कण्ठ की प्रकृति को निर्धारित करती हैं या उसके गुण का धारण करती हैं। इस दृष्टि से कण्ठध्वनि का जो विचार वात आदि धातुओं के आधार पर किया गया वह पूरी तरह सार्थक है।

तंत्रीवाद्यों की वादनशैली के संदर्भ में 'धातु' सबसे प्रमुख और ऐसा शब्द है जिसमें 'धा' (धातु) के दोनों अर्थ यानी धारण करना और पोषण करना पूरी तरह सार्थक होते हैं। यह सभी जानते हैं कि किसी भी तंत्रीवाद्य में स्वर (ध्वनि) तभी उत्पन्न होता है जब तार पर प्रहार यानी आघात किया जाता है जो आम तौर पर मिजराब, गज, जवा, डंडी या उँगली आदि के द्वारा होता है। इसलिए मूल रूप से प्रहार को 'धातु' कहा जाता है। लेकिन प्रहारों से उत्पन्न होने वाले स्वर ही रंजकता को धारण करते हैं और दोषरहित नाद के द्वारा वाद्य के 'बाज' को (यानी वाद्य पर जो कुछ बजाया जाता है उसको) पुष्ट करते हैं इसलिए प्रहारों और उनसे उत्पन्न स्वरों को 'धातु' कहा गया है।[12] उल्लेखनीय है कि ग्रंथों में मुख्य रूप से 34 प्रकार के प्रहार बताए गए हैं[13] जो इसके सूचक हैं कि वाद्यों की भारतीय वादनशैली बड़ी विकसित और समृद्ध रही है।

इस लेख में हमने सिर्फ एक शब्द को लेकर अध्ययन की भारतीय पद्धति पर थोड़ा सा विचार किया। लेकिन यह बता देना उचित होगा कि भारतीय संगीत के शास्त्र ग्रंथों की लंबी परंपरा में नाट्यशास्त्र, बृहद्देशी, भरतभाष्य, संगीतरत्नाकर, संगीतराज आदि ग्रंथ इस तथ्य के प्रमाण हैं कि संगीत के सिद्धान्तों के निरूपण में छन्दःशास्त्र, व्याकरण, दर्शन, शिक्षा वेदांग, काव्यशास्त्र, आगम, आयुर्वेद, रसशास्त्र जैसी ज्ञान की परंपरागत भारतीय शाखाओं के आधार पर तो संगीत के विभिन्न पक्षों का सूक्ष्म और समग्र स्वरूप प्रस्तुत हुआ ही है; साथ ही ध्वनि-विज्ञान, मनोविज्ञान, सौंदर्यशास्त्र आदि जैसी ज्ञान की अपेक्षाकृत आधुनिक पाश्चात्य शाखाओं से जुड़े कई पक्षों के परंपरागत भारतीय चिन्तन के आधार पर भी बड़ा वैज्ञानिक विचार हुआ है। पिछले 4-5 सौ सालों में वह दृष्टि कुछ खोती हुई सी दिखाई देती है। इसलिए आज अपनी परंपरा के प्रति श्रद्धा और विश्वास रखकर अपनी विरासत को पहचानने की और उस पहचान को बनाए रखने की ज़रूरत है।

भारतभूमि पर सरस्वती का वरद हस्त हमेशा रहा है और पिछली लगभग एक शताब्दी में भारत की खोई हुई या छिपी हुई सम्पदा को खोज निकालने और उजागर करने की भावना से अनुप्राणित होकर विद्वान् प्रयत्नशील रहे हैं। हमारा विश्वास है कि उनकी कोशिशों से ज्ञान के क्षेत्र में हम फिर से अपनी उस पहचान को पा सकेंगे जो हमेशा बनी तो रही लेकिन हमारी दृष्टि से ओझल हो गई थी।

सन्दर्भ

1. संस्कृत हिन्दी कोश, आप्टे, पृ० 494, 1969 संस्करण।
2. संगीत रत्नाकर (सं० र०), 3/2, 1959 आड्यार संस्करण।
3. वही, कल्लिनाथ (कल्लि०) व सिंह भूपाल (सिंह०) की टीका।
4. सं० र०, 3/10–12।
5. वही, 4/5–6।
6. वही, 4/7।
7. वही, 4/7, 9।
8. वही, 4/7 पर कल्लि०।
9. वही, 6/944 और कल्लि०।
10. वही, 4/10–11।
11. वही, 3/39-42।
12. वही, 6/124–125।
13. वही, 6/126–165।

कलाकार का स्वरूप : संगीत के परिप्रेक्ष्य में

—स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति

कलाकार का जन्म ही मानवीय भावनाओं के संप्रेषण के लिये होता है। कलाकार के व्यक्तित्व में कलात्मक कौशलों के विकास की तुलना में मानवीय मूल्यों का विकास अत्यधिक अपेक्षित है। कलाकार को सौन्दर्य-बोध के साथ-साथ मानव समाज के अन्तस्तल में आन्दोलित हो रहे मनोभावों का बोध होना परम आवश्यक है। जिस कलाकार के पास यह समझ नहीं, जिसे यह अन्तर्दृष्टि नहीं मिली उसकी कला प्रभावी नहीं हो सकती। सही कलात्मक दृष्टि हमें सभी प्राणियों के प्रति सहभावना एवं सहानुभूति रखने के लिये अभिप्रेरित करती और भाव-जगत् की गतिविधियों को समृद्ध करती है। कलाकार अत्यन्त ही श्रेष्ठ व्यक्तित्व है जिसके पास भावों का वैभव है और भावों के सप्रेषण की शक्ति भी साथ ही सौन्दर्यानुभूति के साथ-साथ उत्पीड़न की गहरी अनुभूति भी। कलाकार अगर एक ओर करूणा के विविध एवं विस्तृत रूपों की अभिव्यंजना करता है तो दूसरी ओर वह जीवन को आतंकित करने वाले विविध रूपों को भी संप्रेषित करता है। कला नवीनता का आह्वान है, नयी दिशा का अभियान है। कलाकार नवीनता का मात्र पुजारी ही नहीं है, अपितु उसे प्रस्तुत करने के लिये सर्वोच्च क्रांतिकारी भी। वह है रूढ़िगत बातों का कुशल विद्रोही, ग़लत परम्पराओं का सशक्त विनाशकर्ता। अगर वह कलात्मक रस में समाधिस्थ होने वाला योगी है तो मानवीय बोध को मानव समाज में आन्दोलित करने वाला पैगम्बर भी। अगर वह कला की आध्यात्मिकता में निमग्न है तो समाज के उत्कर्ष के लिये सजग भी।

हमारे देश में सदियों से ऐसी धारणा बनी हुई चली आ रही है कि संगीत का साधक कलाकार जिसे हम नादोपासक की संज्ञा से भी सम्बोधित करते हैं, वह चैतन्य सत्ता की अप्रतिम कृति है। वह है सांस्कृतिक देवदूत—विमल, विशुद्ध, आर्यवैभव से सम्पन्न मानव। वह सरसता, सरलता एवं संयम का सिद्ध नायक है, प्रेम, सौन्दर्य और आनन्द की त्रिवेणी तीर्थ, उदात्त भावनाओं एवं आदर्शों का प्रस्तोता, भागवत-दृष्टि का प्रकाशक, भागवत-रस, सुरसरि का सशक्त प्रवाहक, चित्त के उन्नयन या उत्कर्ष का सिद्ध अभिप्रेरक एवं समर्थ कार्यकर्ता। सच्चे साधकों के स्वर-अनुरागी जो लय-ताल में लीन रहते हैं उनसे अनैतिक एवं अमानुषिक भावों का धारण, पोषण और अभिव्यंजन, कलुषित विचारों का प्रश्रय या प्रोत्साहन अपेक्षित नहीं। परन्तु आज का संगीत कलाकार अपने वास्तविक स्वरूप को भूल बैठा है। वह भूल बैठा है इस बात को कि भारतीय संस्कृति में कला के लिये केवल कौशल पर्याप्त नहीं है, कला के लिये एक विशिष्ट दृष्टि का होना अनिवार्य है। कला की विशिष्ट दृष्टि है—सौन्दर्य-दृष्टि। भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में सौन्दर्य दृष्टि अनुशासित है। आज कलाकार भूल बैठा है कि सौन्दर्य दृष्टि में शिव-तत्त्व जो आत्म स्वरूप है—अनिवार्य है। वह भूल बैठा है कि कला का प्रयोग मानव व्यक्तित्व की कमजोरियों को हटाने के लिये करना चाहिए, उसका प्रयोग मानव के हृदय-पटल पर अंकित मलिन भावों को मन में फैले हुए दुष्प्रवृत्तियों को आमूल नष्ट कर सद्वृत्तियों एवं सद्भावों को अंकुरित करने, उसे परिप्लावित एवं सुव्यवस्थित करने के लिये करना चाहिये। मानव व्यक्तित्व में संचित भावनात्मक एवं विचारात्मक मल का पूर्ण प्रक्षालन ही कला के प्रयोग का मूल उद्देश्य होना चाहिये। व्यक्ति या समाज में सात्विक भावों एवं विचारों को संचारित करना और व्यापक रूप से व्यक्ति को समाज के लिये एवं समाज को व्यक्ति के लिये जागृत करना कला का मूल उद्देश्य है। कला का धर्म सबको सामान्य रूप से प्रेरित करना है ताकि हर व्यक्ति कला के रसानुभूति एवं रसास्वादन के अनन्तर अपने पुरुषार्थ को सामाजिक जीवन के उत्तरोत्तर परिष्कार के लिये, उसके स्वस्थ्य संतुलित विकास के लिये, उसकी मांगलिक चेतना एवं शक्ति को समृद्ध करने के हेतु लगा सके। व्यक्ति हो या समाज अपनी कला का

प्रयोग वैष्णव-वैभव को समृद्ध करने के लिये करे यही कला के प्रयोग का मुख्य प्रयोजन होना चाहिये।

संगीत कला की भूमिका कला के क्षेत्र में सर्वोपरि है। संगीत द्वारा प्राप्त अनुभूति व्यक्ति को देश एवं काल की सीमाओं से मुक्त करा कर विश्वमानुष के रूप में प्रतिष्ठित कर देती है। मानव की बुनियादी एकता को आन्दोलित करने की क्षमता संगीत कला में पूर्णतः विद्यमान है। निर्विकार गंगा की प्रांजलता व्यक्तित्व में पूर्णतः अवतरित हो जाय व्यक्ति का ऐसा विशिष्ट रूपान्तरण संगीत साधना द्वारा ही सम्भव हो सकता है। खेद है, आज का संगीत कलाकार निर्विकार गंगा जैसी अपने प्रांजल स्वरूप एवं अमृतमय व्यक्तित्व से शनैः-शनैः वंचित होता जा रहा है।

आधुनिकता एवं विलासिता के मोहपाश ने इस देवदूत संगीत-कलाकार को ऐसा आवद्ध कर लिया है कि आज वह अनुशासनहीन मानसिकता, आन्तरिक उच्छृखंलता, अनैतिक कार्य-कलापों एवं व्यवहारों को अपना कर कला की विशिष्टता को नष्ट कर रहा है। खेद है कि आज सद्गुणों का देव-दुर्लभ मानव, संगीतज्ञ, असामाजिक संस्कारों में आवृत्त हो, सांस्कृतिक विघटन पैदा कर रहा है, भारतीय जीवन शैली का अवमूल्यन कर रहा है। सरसता का प्रतीक स्वर-साधक आपसीय कटुता का प्रेषक एवं पोषक बन बैठा है। वह उन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने में मुख्य भूमिका अदा कर रहा है जिनके द्वारा बहुतेरे लोगों में अनेकानेक मानसिक एवं व्यवहारिक विकृतियाँ उत्पन्न हो रही है आज कलाकार संकीर्ण भावनाओं का नेता बन बैठा है। स्वार्थपूर्ण प्रभावों में पड़कर अपनी व्यापक दृष्टि को तिरोहित करता फिर रहा है। संकुचित वृत्तियों को अपना कर सामूहिक जीवन की भावना को खण्डित कर रहा है—यह है आज के कलाधारियों का आदर्श जिसके द्वारा स्वास्थ्य एवं शान्तमय जीवन को नष्ट करने वाले गलत प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कलाकार राष्ट्रोचित गरिमा का प्रतीक होता है, वह मानवोचित चेतना को जगाने के लिये प्रकाश-स्तम्भ की भांति कार्य करता है। वह पूरे मानव समाज को 'स्वस्थ्य मानसिकता का स्वरूप क्या है' इसका दृष्टिबोध देता है। कलाकार पूरे समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिये या उसकी मौलिक अखंडता को पुनर्जीवित एवं पुनः प्रकाशित करने के लिये कला की अभिव्यक्ति करता है। कलाकार को इस यथार्थको, इस 'स्वधर्म' को समझना होगा।

•

महर्षि भरत ने सात ग्रामराग गिनाये हैं, उनके प्रयोग के अवसर भी निर्दिष्ट किये हैं, अन्तरस्वरों के प्रयोग से जातिरागों का जन्म भी बताया है, परन्तु राग का लक्षण नहीं किया है। महर्षि ने ग्राम रागों को जाति से उत्पन्न बताया है। उन्होंने यह भी कहा है कि लोक में जो कुछ गाया जाता है वह सब जातियों में स्थित है। वस्तुतः जातियों के विशद परिसंख्यान ने, जहाँ तिरसठ अंश है, तथा लक्षण विकृति से जहाँ जातियों के अनेक अवान्तर भेद संभव हैं, जातियों के क्षेत्रको इतना विस्तृत बना दिया है कि उसमें किसी भी राग का अन्तर्भाव हो सकता है।

—आचार्य बृहस्पति

(नाट्यशास्त्र २८वाँ अध्याय, टीका)

अकबर-जहाँगीर काल में भारतीय संगीत के कुछ मनोरंजक उल्लेख

—राय आनंद कृष्ण

शास्त्रीय संगीत का हमें जो वर्तमान स्वरूप उपलब्ध है वह मुगल काल के प्रारंभ के थोड़े पहले का है। उसे अकबर और जहाँगीर काल में दरबार में प्रतिष्ठा मिली, वहाँ उसका पर्याप्त विकास भी हुआ। परंतु जौनपुर के हुसैन शाह शर्की और ग्वालियर के मानसिंह तोमर इसमें विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। शर्कियों द्वारा प्रचलित कम से कम तीन रागों से हम परिचित हैं—जौनपुरी, हुसैनी टोड़ी और हुसैनी कान्हड़ा। ग्वालियर में अनेक नायक (संगीताचार्य) थे, तानसेन उनके शिरोमणि थे। मेरा अनुमान है कि वे तानसेन की उपाधि से विभूषित थे, उनके सुपुत्र का भी उल्लेख आईन-ए-अकबरी में है, उनका नाम तानतरंग खाँ था। तानसेन की मियाँ की उपाधि थी, संभव है उन्होंने बाद में इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। इस प्रश्न पर मैंने अन्यत्र एक लेख में विचार किया है। संयोगवश तानसेन का एक तत्कालीन चित्र मिल चुका है जो प्रयाग संग्रहालय में है। इसमें वे अकबर-पूर्वकालीन लंबा जामा पहने हुए हैं अर्थात् उन्होंने अपने रहन-सहन में भी परंपरा का निर्वाह किया था। तानसेन के एक चित्र के पीछे लेख है, 'तानसेन दीपक राग गायो तातें स्याम रंग पायो।' यह लेख परवर्ती है और संभवतः इसका आधार एक परंपरा में है कि दीपक राग गाने से तानसेन झुलस-से गए और उनका रंग काला पड़ गया। संभवतः बाद में तानसेन को कोई ऐसा रोग हो गया था जिससे उनकी त्वचा काली पड़ गई थी। इस पर यह दंत-कथा बन गई होगी।

इस प्रसंग में यह ज्ञात होता है कि अकबर से पहले ही सूर वंश के इब्राहीम सूर ने भी तानसेन को आगरे में अपने दरबार में आने का आग्रह किया था, परंतु तानसेन ने इसे अस्वीकार कर दिया।[1] इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि सूर वंश में भी भारतीय संगीत के प्रति प्रेम और आदर था।

इसी प्रकार लखनऊ के संगीताचार्य बाबा रामदास और उनके पुत्र सूरदास थे। ये महाकवि सूरदास से भिन्न थे। उस काल में सूरदास नाम का अर्थ अंधा व्यक्ति न था, यह लाक्षणिक अर्थ तो उक्त महाकवि के कारण चल पड़ा। वस्तुतः सूरदास, सूरजदास या सूर्यदास का लौकिक रूप था। अकबर पूर्व ये भी इस्लाम शाह सूर के दरबार में थे। इससे भी सूरवंश में भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रति अनुराग का प्रमाण मिलता है। बाबा रामदास की कहानी से भी संगीतकारों, उनके प्रतिपालकों और संगीत केन्द्रों पर प्रकाश पड़ता है। अकबरकालीन इतिहासकार बदायूँनी ने इन्हें लखनऊ का कहा है। उस काल में लखनऊ संगीत का कोई विशिष्ट केन्द्र न था। परंतु उससे भी बढ़कर यह सूचना है कि अबुल फजल उन्हें ग्वालियरी कहते हैं। आईन-ए-अकबरी में ग्वालियर के अनेक संगीतकारों के उल्लेख हैं जो अकबरी दरबार को सुशोभित कर रहे थे। ग्वालियर का तोमरवंश संगीत का बहुत बड़ा प्रतिपालक हुआ था। अकबर के दरबार में वहाँ से आए हुए हिन्दू और मुसलमान दोनों ही वर्गों के उत्कृष्ट गायक आए; जैसे—बाबा रामदास, श्री ज्ञान खाँ, मिया चाँद, सुभान खाँ और उनके भाई विचित्र खाँ, वीर मंडल खाँ, शिहाब खाँ (ये वीणावादक थे), सरोद खाँ, मियाँ लाल (ये जहाँगीर काल में दिवंगत हुए), नायक चर्जू, चाँद खाँ और सर्वोपरि मियाँ तानसेन जो बाद में रीवाँ के राजा रामचंद्र की सेवा में चले गए थे। इसी सूची में सर्वश्रेष्ठ तानसेन थे, उनके बाद बाबा रामदास का नाम लिया जाता था।

यद्यपि यहाँ ग्वालियर के इतने उल्लेख हैं परंतु आश्चर्य है कि जौनपुर के एक भी कलाकार का उल्लेख नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि लोदियों ने जौनपुर को जब मटियामेट कर दिया तो वहाँ के कलाकार अन्य-अन्य केन्द्रों में चले गए, कुछ ग्वालियर भी चले गए हों तो

आश्चर्य नहीं । उपर्युक्त उद्धरण से एक और विलक्षण सूचना भी मिलती है कि इन संगीतज्ञों में अनेक मुसलमान थे फिर उनके नाम हिन्दू या हिन्दू-मिश्रित थे। जैसे—श्रीज्ञान खाँ, सुभान खाँ के भाई विचित्र खाँ, वीर मंडल खाँ, सरोद खाँ, अथवा परवर्ती तानतरंग खाँ आदि । प्रश्न यह है कि क्या ये इनके वास्तविक नाम थे अथवा किसी प्रकार की पदवी थी ।[1] अथवा क्या ये परंपरागत हिन्दू थे, बाद में मुसलमान हो गए, फिर भी इनके हिन्दू नामों की परंपरा चलती रही ।

हम पुनः बाबा रामदास की ओर उन्मुख होते हैं । ये बैराम खाँ खानखाना के आश्रय में भी थे । बैराम खाँ ने जब अकबर के प्रति विद्रोह किया था तब भी वे उक्त खानखाना के साथ थे । उन दिनों बैराम खाँ (धन की) तंगी में थे । फिर भी उन्होंने बाबा रामदास को एक लाख टंका का पारितोषिक दिया था ।[3] बदायूनी के अनुसार तानसेन के बाद इन्हीं बाबा रामदास का नंबर आता था ।

उपर्युक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि अकबर-पूर्व भी मुस्लिम राजदरबारों में भारतीय संगीत का पूर्णतः प्रतिपालन हो रहा था । बैराग खाँ का वृत्तांत तो और भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वह स्वयं ही भारत में आ बसा था, वह भी राजनीतिक परिस्थितियोंवश पर इतने कम समय में ही वह भारतीय संगीत के प्रति इतना समर्पित हो गया था । इसके बाद (संभवतः) बैराभ खाँ की हत्या हो करदी गई थी । उपर्युक्त संदर्भों से यह स्पष्ट होता है कि अकबर-पूर्व भी भारतीय संगीत परंपराओं का मुस्लिम उच्चवर्ग में कितना सम्मान था। आईन-ए-अकबरी की सूची में एक रंगसेन नामक संगीतज्ञ का भी उल्लेख है। ये अकबरी दरबार में थे तथा इन्हें आगरे का बताया गया है । संभवतः लोदी और सूर काल में आगरे में भारतीय संगीत की प्रतिष्ठा हुई होगी ये उसी के प्रतिनिधि रहे होंगे ।

सभी इतिहासकारों का निश्चित मत है कि तानसेन पहले ग्वालियर के तोमरवंशीय राजसभा में थे फिर वहाँ से बांधवगढ़ के राजा रामचन्द्र के दरबार में आ गए । उन्होंने राजा रामचन्द्र पर अनेक ध्रुपदों की रचना भी की थी जिनमें से कुछ उपलब्ध हैं । कहीं-कहीं परवर्ती गायकों ने राजा मान की प्रशस्ति में प्रस्तुत ध्रुपदों को राजा राम की प्रशस्ति का बना दिया है । फिर स्वयं राजा राम की प्रशस्ति वाले ध्रुपदों से हम भली भांति परिचित हैं ।

उसी समय बांधवगढ़ (रीवाँ) में भित्रमिश्र नामक आचार्य ने वीरभानूदय काव्यम् (दशम सर्ग) में अंकित किया है कि वहाँ के राजा रामचन्द्र तानसेन को प्रति ध्रुपद करोड़ टंक (सिक्के) देते थे 'राग प्रतीह प्रति तानमेतत् प्रति ध्रुपत्कोटिशशांक टंका ॥26॥' इसी प्रकार हम देखेंगे कि अकबर ने तानसेन को पहली बार के गायन पर दो लाख रुपये दिए ।[4] इसके साथ ही यह भी वृत्तांत मिलता है कि राजा रामचन्द्र बघेला ने अकबर का आदेश अस्वीकार कर दिया था और तानसेन को आगरे नहीं भेजा । इस पर अकबर ने अपने राज्यकाल के सातवें वर्ष जल्लालुद्दीन कूरची को लश्कर के साथ भेजा, इस पर राजा रामचन्द्र ने विवश होकर तानसेन को बिदा किया ।[5] अबुलफ़ज़ल लिखता है कि सारे भारत में तानसेन की रचनाएँ प्रचलित हैं ।

वीर-भानूदय काव्य (दशम सर्ग, श्लोक **29**) के अनुसार तानसेन जैसा न (कोई कलाकार) हुआ न होगा 'भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानौ न तानसेने सदृशां धरिण्याम् ।' ध्यान देने योग्य है कि प्रायः यही बात अबुल फ़ज़ल ने अपनी आईन-ए-अकबरी में दूसरे शब्दों में कही है, 'इनके समान गायक विगत हजार वर्ष में नहीं हुआ ।'

प्रायः यही उक्ति जहाँगीर की है ।[6] जहाँगीर लिखता है : 'तानसेन अद्वितीय हुए । वह मेरे पिता की सेवा में थे । उनके बराबर कोई गायक कभी किसी काल में न हुआ ।' इन उक्तियों में भाव-साम्य देखने योग्य है ।

साहित्य वाचस्पति स्व० हरिहर निवास जी द्विवेदी ने राग दर्पण नामक ग्रंथ के आधार पर अपनी मानसिंह और मान कुतूहल नामक पुस्तक प्रकाशित कर भारतीय संगीत के अध्येताओं पर अपार उपकार किया है । उक्त राग दर्पण का लेखक फकीरुल्लाह था जो औरंगजेब का कश्मीर में सूबेदार था । फकीरुल्लाह को ग्वालियर के राजा मान का ग्रन्थ मान कुतूहल जो अब अप्राप्य है उपलब्ध था । द्विबेदी जी ने फकीरुल्लाह द्वारा उद्धृत अंशों के आधार पर उक्त मान-

कुतूहल का एक प्रकार से पुनर्निमाण किया है। फकीरुल्लाह लिखता है कि तानसेन को लोग 'अताई' कहते थे। द्विवेदी जी अताई शब्द का यह आशय लेते हैं कि जिसे व्यावहारिक ज्ञान हो, सिद्धान्त का ज्ञान न हो उसे अताई कहा जाता है। सुप्रसिद्ध सरोद-वादिका पद्मश्री श्रीमती शरण रानी जी से मैंने जिज्ञासा की तो उन्होंने अपनी परंपरा के आधार पर कहा कि उस कलाकार को अताई कहा जाता है, जिसके अपने परिवार में संगीत न रहा हो। दूसरे शब्दों में किसी संगीत घराने में बाहर से आए हुए शिष्यों को अताई कहा जाता है। मुझे इन दोनों अर्थों का ज्ञान नहीं है। मैंने अपने जीवन के प्रारंभ में लोगों को संगीत (तथा अन्य संदर्भों) में इस शब्द का व्यवहार उन कलाकारों के विषय में प्रयोग करते सुना था जो बरबस उस क्षेत्र में घुस जाते और अभ्यास के आधार पर प्रस्तुति तो कर लेते पर वैसी प्रस्तुति मान्य न थी। दूसरे शब्दों में यह उपहास्पद उक्ति थी। इसका प्रयोग अति-उत्साही एवं अमान्य प्रकार के व्यक्तियों के लिए होता था, जो कभी-कभी संगीत (आदि) में निरर्थक कलाबाजियों की अति कर डालते।

मेरी दृष्टि में फकीरुल्लाह ने बड़े मार्के की बात कही है। इसके आधार पर कुछ और निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। यहाँ फकीरुल्लाह स्वयं को उक्त दरबारी संस्कृति से परे एक अन्य धारा में रख रहे हैं। हमें यह न भूलना चाहिए कि तानसेन उस युग में हुए जब विष्णुपद और छंद-प्रबंध परंपराओं में से धुरपद (ध्रुपद का व्रजभाषा-रूप) का उदय हो रहा था। संभवतः यह ग्वालियर राज-सभा की देन थी और आश्चर्य नहीं कि राजा मानसिंह तोमर के निर्देशन में तानसेन ने ही धुरपद का प्रचलन किया हो। ध्यान देने योग्य है कि प्रायः इसी समय वल्लभाचार्य के शिष्य गण जिनमें महाकवि सूरदास अग्रगण्य हैं, व्रजभाषा काव्य साहित्य को एक नया व्यक्तित्व प्रदान कर रहे थे अथवा ग्वालियर क्षेत्र समेत एक बहुत बड़े भूभाग में राजस्थानी शैली के चित्रों का उदय हो रहा था।

हमें यह न भूलना चाहिए कि पुराण-पंथियों का अवश्य ही एक ऐसा प्रबल वर्ग रहा होगा जो इन परिवर्तनों को स्वीकार करने में असमर्थ था। उनकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई होगी। पर इन आंदोलनों के सशक्त प्रवाह में वे परंपरावादी कहाँ खो गए, इनका अब पता-ठिकाना तक नहीं है। उसी पांडित्य-पूर्ण विधि-निषेध वाली परंपरा ने तानसेन जैसे 'नव गीतकार' को यदि अताई कहा हो तो आश्चर्य नहीं। यद्यपि ग्वालियर, बांधवगढ़ (रीवां) और अन्त में अकबर की राजसभाओं में तानसेन तथा उनके समसामयिक धुरपदियों, एवं शिष्यगणों ने संगीत की ध्वजा फहरा दी और उनके प्रशंसक तानसेन का यशोगान करते नहीं अघाते पर हम इस परिस्थिति को अनदेखा नहीं कर सकते कि उस समय भी संगीत में पुराण पंथी रहे होंगे। यदि उन्होंने तानसेन आदि को अताई कहा तो आश्चर्य नहीं।

हम ऊपर आचार्य हरिहर निवास जी द्विवेदी की उस व्याख्या का उल्लेख कर चुके हैं कि अताई शब्द से यह आशय होता है कि तानसेन संगीत सिद्धांत से अपरिचित रहे होंगे, इसीलिए उन्हे अताई कहा गया। चार छ वर्ष पूर्व पू० बहन प्रेमलता जी शर्मा को आतिथ्य देने का गौरव मुझे प्राप्त हुआ था। तानसेन सम्बन्धी चर्चा चल रही थी। प्रेमलता जी से ज्ञात हुआ कि तानसेन ने अपने धुरपदों में संगीत के सूक्ष्म से सूक्ष्म सिद्धांतों का सही सही, अनुक्रम से उल्लेख किया है, कहीं-कहीं संकेत से व्याख्या भी दी है।

मैं इस संक्षिप्त निवेदन के अन्त में यह भी उल्लेख कर दूँ कि आईन-ए-अकबरी में उल्लखित 36 कलाकारों में 15 को निश्चित रूप से ग्वालियर का बताया गया है[7], दो-एक अन्य भी हो सकते हैं। इस सूची में प्रथम 22 कलाकार भारतीय हैं, शेष ईरानी आदि। आईन-ए-अकबरी से प्राप्त अन्य सूचियों में भी इस प्रकार की क्रमबद्धता पर बहुत ध्यान दिया जाता था अतः हम कल्पना कर सकते हैं कि अकबर ने भारतीय कलाकारों को वरीयता दी थी। इनमें भी तानसेन को प्रथम स्थान दिया गया। यद्यपि अन्य संगीतकारों के विषय में कोई विशिष्ट उल्लेख नहीं है, परन्तु तानसेन के विषय में स्पष्ट ही कहा गया है, 'इनके समान गायक विगत हजार वर्षों में न हुआ।'

ये ग्वालियरी संगीतकार, परंपरागत रहे होंगे। तानसेन के पुत्रगण भी प्रसिद्ध आचार्य हुए, उनके जामाता भी। उक्त सूची में मियाँ चाँद को तानसेन का शिष्य बताया गया है।

इसी प्रकार सुभान खाँ ग्वालियरी के भाई विचित्र खाँ भी इस सूची में है।[8] आईन-ए-अकबरी की इस सूची में कुछ अन्य नाम भी विचारणीय है, जैसे–श्रीज्ञान खाँ। वीरमंडल खाँ ग्वालियरी के विषय में ज्ञात होता है कि वे सुरमंडल बजाते थे। इन दोनों में नाम साम्य द्रष्टव्य है। सरोद खाँ गायक थे परंतु स्वरोदय वाली प्राचीन परंपरा के अनुसार यह नाम है। कहा जाता है कि सरोद नामक वाद्य बाद में बना। पर कम से कम संगीत से संबंधित यह नाम तो अकबर काल में प्रचलित ही था, अवश्य ही इसका इतिहास और प्राचीन होगा तभी अकबर काल में इसका प्रचलन था। इसी प्रकार प्रवीन खाँ भी परंपरा से प्राप्त नाम है ये वीणा वादक थे। ध्यान देने योग्य है कि उस काल से परंपरा में आज तक वीणा को "बीन" कहा जाता है अतः प्र + बीन नाम सार्थक है, श्लेषयुक्त है।

परन्तु आईन-ए-अकबरी ने तत्कालीन नौबत खाँ बीनकार का नाम तक नहीं लिया है। इनके तत्कालीन स्वतंत्र चित्र मिले हैं। इसके अतिरिक्त विक्टोरिया एंड अलबर्ट म्यूजियम, लंदन संग्रह में अकबर-नामे की सचित्र प्रति में, दरबार के दृश्यों में कभी-कभी नौबत खाँ बीन बजाते हुए दिखलाए भी गए हैं।

वस्तुतः हम इस प्रकार के अध्ययन को उस काल की एक झलक मात्र कह सकते हैं।

चर्चा का शेष भाग 'नादार्चन' के अगले अंक में समाप्त होगा।

सन्दर्भ

1—ब्लाखमैन एवं फिलॉट द्वारा अंग्रेजी में अनूदित एवं संपादित आईन-ए-अकबरी, भाग 1, पृ० 681, पाद-टिप्पणी 1

2—हमें ज्ञात है कि शाहजहाँ ने लाल खाँ नामक संगीतज्ञ को गुण–समुद्र खाँ की उपाधि दी थी।

3—वही, पृ० 861

4—ब्लाख़मैन कृत आईन-ए-अकबरी के अंग्रेजी अनुवाद, पृ. 445 (आईन 30 के अन्तर्गत अनुवादक और संपादक की टिप्पणियां)। यह वृत्तांत सं. 89 रामचन्द्र बघेला के अन्तर्गत है।

5—वही, पृ० 445।

6—तुजुक-ए-जहाँगीरी का अंग्रेजी अनुवाद, भाग 1 पृ० 143, अनुवादक अलेक्जेंडर रोजर्स।

7—अकबर के दरबार में नंद ग्वालियरी नामक एक शाही चित्रकार भी था। स्थान परिवर्तन के होते हुए भी उसने अपनी मूल परंपरा को नहीं छोड़ा था और नाम के साथ सदैव उल्लेख करना आवश्यक समझा।

8—इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (जो बीजापुर के सुल्तान थे) के दामाद भी गायक थे। उनका नाम भी विचित्र खाँ था ऐसा उनके एक तत्कालीन पोर्ट्रेट से ज्ञात होता है जिसे जहाँगीर के शाही चित्रकारों ने तैयार किया था। यह जहाँगीरी मुरक्के (चित्राधार) में है जो अब बर्लिन के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है।

जैन परिप्रेक्ष्य में संगीत

—श्रीमती कमल जैन

संगीत अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है। वह मानव जीवन का ऐसा पुष्प है जिसकी समधुर सौरभ दिग्दिगन्त में फैल कर जन-जन के मन को मुग्ध कर देती है। मनुष्य देशकाल तथा परिवेश की परिधि से बाहर निकल कर अवसादहीन स्फूर्ति का सृजन-संगीत सुनने लगता है। प्रकृति तो स्वयं ही संगीतमयी है। गगनचारी विहंगों के मधुर गीत, झरनों का कल कल निनाद मधुर मलय पवन के झोंको से पल्लवित पेंड़ पत्तों का संगीत किसको उल्लासित नहीं करता।

जैन हरिवंश पुराण में कहा गया है कि नृत्य, संगीत एवं वादित्र द्वारा मनुष्य मनोरंजन एवं स्फूर्ति का अनुभव करता है। जैन ग्रन्थों में संगीत को पुरुष की 72 कलाओं के अन्तर्गत माना गया है, स्त्री की 64 कलाओं में संगीत मुख्य था। जैन महा पुराण में भी संगीत तथा नृत्य-गोष्ठियों के आयोजन के उल्लेख आये हैं।

निवृत्ति प्रधान जैन-परंपरा में भी संगीत का बड़ा महत्व माना गया है। वहाँ इन कलाओं का उदारीकरण करके इन्हें वैराग्य-भावना और अध्यात्मिक पवित्रता का माध्यम बनाया गया था। जैन-परंपरा के प्रसिद्ध आचार्य हरिभद्र कहते हैं कि जब किसी नये जिन मन्दिर या चैत्यालय का निर्माण हो तो उसमें भक्ति पूर्वक संगीत, नृत्य, गायन का आयोजन करके प्रभु भक्ति-करनी चाहिये।

जैन परंपरा के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के वैराग्य को प्रदीप्त करने में महत्वपूर्ण निमित्त कारण नीलांजना का नृत्य करते हुए देहपात हो जाना था। नीलांजना की यह कला स्पष्ट करती है कि जैनों ने किस प्रकार इन कृत्यात्मक कलाओं को त्याग और वैराग्य के साथ जोड़ दिया है। जैन परंपरा में भक्ति-मार्ग का विकास ही धार्मिक जीवन में इन कृत्यात्मक कलाओं के उपयोग का आधार बना। देवगण तीर्थंकर के समय भक्तिवश विभिन्न मंगलमय नृत्य एवं नाटक प्रस्तुत करते थे।

श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ राजप्रश्नीय में सूर्याभदेव द्वारा महाबीर के समक्ष संगीत एवं नृत्य के साथ नाटक करने की कथा मिलती है। सूर्याभदेव की आज्ञा पाकर देव कुमार और देव कुमारियाँ एक साथ नीचे झुके और एक साथ मस्तक उठा कर उन्होंने अपना नृत्य और गीत आरम्भ किया। उसके पश्चात 32 प्रकार की नाट्य विधियाँ प्रस्तुत कीं जिसमें स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य, आवर्त-प्रत्यावर्थ, श्रेणी प्रश्रेणी, सौवस्तिक, पुष्पमानव आदि प्रमुख थीं। स्वस्तिक नाट्यविधि में कलाकार आठ मंगलों का आकार बनाकर खड़े हो जाते और फिर हाथ आदि के द्वारा उस आकार का प्रदर्शन करते तथा वाचिक अभिनय के द्वारा मंगल शब्द का उच्चारण करते जिससे दर्शकों के हृदय में उस मंगल के प्रति रति भाव समुत्पन्न होता।

अन्य आगम ग्रन्थों में भी अनेक स्थलों पर नाट्यविधियों का उल्लेख हुआ है। उतराध्ययन सूत्र की टीका में कहा गया है कि जब ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पद पर आसीन हुआ तो उसके सामने एक नट ने "मधुकरी गीत" नामक नाट्य विधि प्रदर्शित की। स्थानांग सूत्र में चार प्रकार के नाट्यों का वर्णन है—अंचित, रिभित, आरभट और भसोल।

तीर्थंकर के जन्म कल्याणक अवसर पर देवी देवताओं द्वारा संगीत, नृत्य और नाटक करने के उल्लेख कल्पसूत्र और प्राचीन जैन ग्रन्थों में भी उपलब्ध होते हैं। उस समय तीर्थंकर के पारिवारिक जन भी उनके जन्म, निष्क्रमण, जिनत्व की प्राप्ति आदि के अवसर पर संगीत नृत्य आदि का आयोजन करते थे। उस समय मंगल गीतों, और विविध वाद्य वृन्दों की कर्ण प्रिय धुनों से गगन-मण्डल गुंजरित हो

उठता था। लय और ताल पर नृत्य के साथ-साथ मंगल गान गाती हुई कोकिल कण्ठिनी सुरवधुओं के नूपुरों की झंकारों और सुकोमल कण्ठरवो से मादकता मुखरित हो उठती थी।

जैन हरिवंश पुराण में किन्नर, गन्धर्व, तुम्बुरू, नारद तथा विश्वावसु को संगीत के देवता के रूप में मान्यता दी गई है। जैन ग्रन्थों में गन्धर्व कला का प्रतिपादन करते हुये तंत्री समुत्थ, वेणु समुत्थ और मनुज समुत्थ नामक नादों का उल्लेख है। नादों का उत्थान कैसे होता है? स्वर-भेद कैसे होते हैं? ग्राम-मूर्च्छना और राग कितने होते हैं? आदि विषयों का प्रतिपादन किया गया है जैन पुराणों में सप्त स्वर-षड्ज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद का उल्लेख उपलब्ध है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में स्पष्टतया वर्णित है कि सप्तस्वर का सम्बन्ध शारीरिक अवयवों से है। कण्ठ से षड्ज, शिर में ऋषभ, नासिका से गंधार, हृदय से मध्यम मुख में पंचम, तालु में धैवत और सर्व शरीर में निषाद। गीत, वाद्य एवं नृत्य ताल में ही प्रतिष्ठित होते हैं। लघु, गुरु, प्लुत से युक्त सशब्द एवं निशब्द क्रिया द्वारा गीत, वाद्य एवं नृत्य को परिमित करने वाला काल ताल का बोधक माना जाता है। पद्म पुराण में ताल की त्र्यश्र और चतुरश्र दो प्रकारों का उल्लेख है। लय के 3 भेद बिलंबित मध्य और द्रुत कहे गये हैं। ताल लय से सामञ्जस्य रखते हुये अंग-भंगिमा द्वारा अपने मनोगत भावों का प्रदर्शन कर दर्शकों के मन में उन्हीं भावों को उत्पन्न करने की कला को नृत्य कहा गया है। पद्म पुराण में कहा गया है कि दर्शकों की संतुष्टि के लिये नर्तकों को समवेत स्वर में गाना चाहिये; उन्हें नेत्रों को रूप-लावण्य से, श्रोत्र को मधुर स्वरों से एवं मन को छवि तथा स्वर से आबद्ध करना चाहिए।

जैन आचार्यों ने चौदहवीं शती में 'संगीत समयसार' और 'संगीतोपनिषद सारोद्धार' ग्रन्थों की रचना की। आचार्य पार्श्वदेव ने अपने 'संगीत समयसार' में नव अधिकरणों में नाद, नवीन राग, वाद्य, ताल-प्रस्तार, प्रबंध, अभिनय-नृत्य आदि अनेक विषयों पर प्रकाश डाला है। वाचनाचार्य सुधाकलश ने 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' में 6 अध्यायों में गीत-प्रकाशन, ताल-प्रकाशन, रागादि प्रकाशन, चतुर्विध वाद्य प्रकाशन, नृत्यांग, उपांग; प्रत्यांग नृत्य पद्धति आदि विषयों का विवेचन किया है।

जैन ग्रन्थों में वाद्यों को तत वितत, घन तथा सुषिर इन चार भागों में विभक्त किया गया है। निशीथ सूत्र में तत के अन्तर्गत वीणा, विपञ्ची, वद्धिसग, तुणय, तुम्बवणिया, ठंकुण और जोड़य आदि वाद्यों का उल्लेख किया गया है। चर्म से आबद्ध वाद्य वितत कहे गये हैं। इनमें मृदंग, दर्दुर, भेरी डिंडिम आदि है। कांस्य आदि धातुओं से बने वाद्य घन कहलाते है, यथा—करताल, कांस्यवन, नयभटा, सुक्तिका, कण्ठिका, पटवाद्य, पट्टाघोष, धर्धर, झंझताल मंजिर कर्तरी आदि। फूँक कर बजाये जाने वाले वाद्य सुषिर हैं। सूत्र कृतांग में "कुक्कयय" और वेणु-पलाशिय बाँसुरियों का वर्णन करते हुए कहा है कि ये दाँतों में बायें हाँथ से पकड़ कर वीणा की भांति दाहिने हाथ से बजाई जाती हैं।

जैन ग्रन्थों में ऐसे और भी अनेक सांगीतिक सन्दर्भ ढूँढ़े जा सकते हैं जहाँ वर्णित अधिकांश विषयों का निरूपण संगीत से सम्बद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ—भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र, मतंगकृत बृहद्देशी, तथा शार्ङ्गदेव प्रणीत संगीत रत्नाकर आदि के सदृश ही विषयों का ग्रहण एवं विवेचन किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निवृत्तिप्रधान जैन-परंपरा में भी संगीत का महत्वपूर्ण स्थान था। आज भी जिन मन्दिर संगीत-नृत्य और नाट्य कला के केन्द्र हैं। जैन धर्म की सभी परंपराओं में विभिन्न-विधि-विधानों के अवसर पर भक्ति-गीत गाये जाने के उल्लेख हैं। सच तो यह है कि तनावों से मुक्त करने और अपनी चित्त-वृत्ति को केन्द्रित करने के लिये संगीत मानवमात्र के लिए एक सशक्त माध्यम है।

सहायक-ग्रन्थ

1. जैन साहित्य का बृहत् इतिहास, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संथान 2. आदिपुराण
3. हरिवंश पुराण 4. राजप्रश्नेय सूत्र

ध्रुवपद पर प्राकृतिक तत्वों का प्रभाव

—जयचन्द शर्मा

भारतीय संगीत में 'ध्रुवपद' गायन शैली का महत्व सर्वाधिक माना गया है। इस गायन शैली में स्थिरता, गम्भीरता और दृढता है। यह शैली सूर्य की तरह प्रकाशमान है। जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार स्वतः ही दूर हो जाता है। प्रकाश की इन किरणों की खोज करने पर पाया जाता है कि ध्रुवपद का स्वरूप हमारे हृदय में एक ज्योति की तरह बिराजमान है। हम साधना के माध्यम से स्वयं नाद-ब्रह्म का दर्शन कर सकते हैं और इसका लाभ श्रोताओं को भी पहुँचाया जा सकता है।

ध्रुवपद क्या है ?

शास्त्रीय संगीत की एक गायन-शैली का नाम ध्रुवपद है। इसमें चार अवयव (स्थायी, अन्तरा, संचारी, आभोग) होते हैं। इस शैली को शुद्ध, सात्विक, गम्भीर, धार्मिक तथा मर्दाना गायन-शैली मानते हैं। इसकी प्रस्तुति में लयदारी का काम विशेष तौर से किया जाता है। नोम्-तोम् की आलापचारी, मींड, घसीट तथा गमक का प्रयोग करके राग को सजाया जाता है। ख़याल की तरह इसमें तानें नहीं ली जातीं। ताल-संगत के लिए पखावज वाद्य का प्रयोग किया जाता है। इस शैली को चार प्रकार से गाया जाता है, जो 'चार वाणी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। चारों वाणियों के नाम हैं—डागुरी-वाणी, खंडारी-वाणी, नौहारी-वाणी और गोरारी-वाणी, जिसे गुवरहारी-वाणी भी कहते हैं।

ऐतिहासिक परिपेक्ष्य :

ध्रुवपद शैली के विषय में स्मरण करते हैं तो ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर (1486-1516 ई०) स्वामी हरिदास, बख्शू ढोढी, बैजू बावरा, तानसेन आदि कलाकारों एवं संगीतज्ञों की झाँकी सम्मुख आती है। उस युग में ध्रुवपद शैली का इतिहास अत्यन्त समृद्ध रहा। मुगल बादशाह अकबर के संरक्षण में यह शैली बहुत ही सुचारु रूप से पनपती रही।

अंग्रेजी शासनकाल में भी ध्रुवपद का प्रचार-प्रसार रहा। किन्तु वर्तमान में यह शैली लुप्त होती जा रही है। इसके स्थान पर ख़याल-शैली अपना प्रभुत्व स्थापित करती हुई निरन्तर अग्रसर हो रही है।

मानसिंह तोमर- विरचित 'मानकुतूहल' ग्रंथ के आधार पर वर्तमान में प्रचलित ध्रुवपद शैली के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस ग्रंथ में दी गई रचनाओं को 'विष्णु-पद' कहा गया है, जो व्रजभाषा से प्रभावित हैं। इससे यह विदित होता है कि ध्रुवपद का प्रचार इससे पूर्व भी था। संगीत रत्नाकर ग्रंथ (१३ वीं शताब्दी) में 'ध्रुव-प्रबन्ध' सोलह प्रकार उपलब्ध होते हैं, जिनके नाम हैं—जयन्त-प्रबन्ध, शेखर-प्रबन्ध, उत्साह-प्रबन्ध, मधुर-प्रबन्ध, निर्मल-प्रबन्ध, कुन्तल-प्रबन्ध, कमल-प्रबन्ध, चार-प्रबन्ध, नन्दन-प्रबन्ध, चन्द्रशेखर-प्रबन्ध, कामोद-प्रबन्ध, विजय-प्रबन्ध, जयमंगल-प्रबन्ध, तिलक-प्रबन्ध और ललित प्रबन्ध।

उपर्युक्त प्रबन्धों के अक्षर क्रमशः 11 से लेकर 26 तक के हैं। इनके साथ बजाये जाने वाले तालों के नाम भी हैं। शेखर-प्रबन्ध 12 अक्षर 'निस्सारुक-ताल' में गाया जाता था। इसको वीर-रस का प्रबन्ध माना है तथा ऋद्धि और सौभाग्य की प्राप्ति होने का उल्लेख है।

'निस्सारुक-ताल' में 9 मात्रा 3 भाग और तीन ताली हैं, जो आज के ध्रुवपद गान से बिलकुल भिन्न हैं। इसी प्रकार अन्य प्रबन्धों का तालमेल वर्तमान गायन शैली से नहीं है। पर यह तो स्वीकार करना ही होगा कि मानसिंह तोमर के कार्यकाल से पूर्व भी ध्रुवप्रबन्ध का प्रचलन था, चाहे वह शैली कैसी भी रही हो।

संगीत की उत्पत्ति एवं तदन्तर्भूत ध्रुवपद शैली :

संगीत की उत्पत्ति नाद से मानी गयी है। 'नाद' की उत्पत्ति वायु और अग्नि के संयोग से होती है। 'नाद' की विभिन्न ध्वनियों संयोग से स्वर और शब्द की उत्पत्ति हुई है।

मनः सृष्टि विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया ।
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ॥
(मनु स्मृति)

सृष्टि करने की इच्छा से प्रेरित मन सृष्टि करता है। मन से आकाश उत्पन्न होता है और आकाश गुण ही शब्द कहलाता है।

संगीत कला में स्वर-शक्ति और शब्द शक्ति दोनों का प्रभाव तो है ही परन्तु लय-शक्ति के बिना इनका कोई महत्व नहीं रह जाता है। समस्त सृष्टि का संचालन लय द्वारा होता है। स्वर और लय के योग से अनेक प्रकार के रागों व तालों का निर्माण होता है, जिससे अनेक प्रकार की गायन शैलियाँ बनती हैं। ध्रुवपद भी एक गायन-शैली है, जिसके स्वरूप के विषय में यहाँ विचार किया जा रहा है।

ध्रुवपद का स्वरूप :

ध्रुवपद गायन शैली के स्वरूप के विषय में किसी भी प्राचीन व अर्वाचीन ग्रंथों में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। आज से 52 वर्ष पूर्व महाजन ग्राम (बीकानेर) निवासी स्व० पण्डित केशरी चन्द जी शास्त्री (प्रज्ञाचक्षु) ने ध्रुवपद के स्वरूप का एक चित्र दिखलाया था, जिसमें ध्रुवपद का स्वरूप निम्न प्रकार था।

'बारह पंखुड़ियों के कमल-दल-चक्र के मध्य बालक ध्रुव की तरह एक साधक ध्यान-मग्न बैठा है। वह लम्बे बाल, ऊँचा ललाट, तिलक लगाये, बाल कंधे तक बिखेरे हुए, पोतवस्त्र धारण किये हुए है। साधक के दोनों तरफ दो-दो व्यक्ति हाथों में चँवर लिए खड़े हैं। आसपास का वातावरण रमणीय वन की तरह शोभायमान है। सूर्य की प्रथम किरण पृथ्वी पर गिर रही है, आकाश में कुछ लालिमा छाई है। काफी दूर पर सप्त-ऋषि, सप्त-स्वरों के रूप में बैठे तपस्या कर रहे हैं।'

प्राचीन ग्रंथों में स्वरों और रागों के स्वरूप के सम्बंध में काफी कुछ मिलता है। स्वरों के सम्बन्ध में ग्रन्थकार इनके साकार रूप को प्रगट करने के लिए स्वरों की जाति, जन्मभूमि, जन्मतिथि, नक्षत्र, वार, रंग वस्त्र, शस्त्र, ऋषि, देवता, वाहन आदि का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार रागों के स्वरूप को प्रकट करने के लिए विविध शैली में उनके चित्र उपलब्ध होते हैं। सप्त स्वरों के स्वरूप का सैट 'श्री संगीत भारती बीकानेर' में देखा जा सकता है। विद्वानों की मान्यता है कि ये बीकानेर शैली के चित्र 18 वीं 'शदी' के होने चाहिए। पं० केशरीचन्द जी शास्त्री जो दर्शन-शास्त्र और संगीत-शास्त्र के विद्वान् थे कहते थे कि ध्रुवपद की साधना से पूर्व उसके स्वरूप को आत्मा में स्थापित करो फिर उसको गाओ। भारतीय संगीत मनोरंजन मात्र नहीं है। यह मोक्ष प्राप्ति का सरल, सुगम व सर्व श्रेष्ठ साधन है, जिसका सम्बन्ध प्राकृतिक तत्वों से है।

प्राकृतिक तत्व :—

संगीतमय मधुर ध्वनियों का साकार रूप साधकों को प्रकृति द्वारा उपलब्ध हुआ। नाद-ब्रह्म के साधकों ने ब्रह्माण्ड में निनादित नाद-लहरों की खोज योग-साधना द्वारा करने पर जो कुछ पाया, उन्हीं का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया उन्होंने गहन चिन्तन, अध्ययन और मनन करने पर पाया कि इस सृष्टि का संचालन दो महान् शक्तियों द्वारा किया जाता है, जिन्हें हम शिव और शिवा-शक्ति के रूप में जानते हैं। शिव स्थिर है और शिवा चंचल। स्वर का स्थिर-स्वरूप सूर्य में स्थित है। सूर्य की सप्त-रश्मियाँ ही सप्त स्वरोत्पत्ति का प्रमुख आधार है। सूर्य की 12 कलाएँ हैं। इन्ही 12 कलाओं की लय बारह मात्रा के ताल का निर्माण करती हैं, जिसे हम 'ध्रुवपद' नाम से सम्बोधित करते हैं। प्रकृति में इस लय का संचालन सृष्टि की भाँति की उत्पत्ति के साथ चलता आया है, इस लिए यह अटल है, ध्रुव की भाँति स्थिर है और जब तक यह सृष्टि रहेगी, तब तक इसका स्वरूप अटल रहेगा।

ब्रह्माण्ड में जो कुछ घटित होता है, वही इस कायपिण्ड में भी होता है। मानव के हृदय में स्थिति 'अनाहत चक्र' बारह पंखुड़ियों का है। इससे बारह व्यञ्जनों की उत्पत्ति होती है। यथा—कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं। ये बारह पंखुड़ियों से उत्पन्न व्यञ्जन बारह मात्राओं का बोध कराते हैं। हृदय में स्थित इस चक्र के विषय में गहराई से अध्ययन, चिन्तन एवं मनन करने से ज्ञात होगा कि ब्रह्माण्ड की लय ही कायपिण्ड में व्याप्त षटचक्रों के रूप में संचालित है। इस प्रकार 12 (बारह) मात्राओं के इस ध्रुवपद नामक छन्द का सीधा सम्बन्ध 'अनाहत-चक्र' सूर्य की बारह कलाओं, बारह-आदित्य, बारह महीनों, बारह राशियों आदि से होने के कारण ही इस शैली का नाम मनीषियों ने ध्रुव प्रबन्ध, ध्रुवागान, ध्रुवपद अर्थात ध्रुपद रखा जिसकी साधना करने वाला साधक स्थिर भाव से सृष्टि में व्याप्त लय में लीन होकर मोक्ष प्राप्त कर सके अर्थात् 'ध्रुव' का पद प्राप्त कर सके। वास्तव में देखा जाय तो भारतीय संगीत-साधना का प्रमुख लक्ष्य यही रहा है।

षट-चक्र कमल-दल :

शास्त्रीय संगीत के कुछ ही ताल ऐसे हैं, जिनका संबंध प्रकृति के लय में पाया जाता है। इस रहस्य को हमारे मनीषियों ने योग-क्रियाओं द्वारा समझा। योगीजन 'कुण्डली' जागृत करने के लिए यौगिक क्रियाएँ करते हैं। उनको उन क्रियाओं को करने के लिए षटदल-कमल-चक्रों का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक हैं। षटचक्र-दलों से स्वर और व्यञ्जनों की उत्पत्ति हुई है और इन्हीं चक्रों द्वारा मात्राओं व तालों की भी उत्पत्ति हुई है। कौन से चक्र से कौन सी ताल की उत्पत्ति हुई, इसकी तालिका आगे दी जा रही है।

तालिका

क्रम संख्या	चक्र नाम	स्थान	पंखुड़ियां	मात्राएँ	ताल नाम
1	आज्ञा चक्र	भृकुटि के मध्य	दो	2	लय दर्शक
2	मूलाधार	गुदा	चार	4	कहरवा
3	स्वाधिष्टान	लिंग	छः	6	दादरा
4	मणिपूरक	नाभि	दस	10	सूल ताल
5	अनाहत	हृदय	बारह	12	ध्रुवपद (चारताल)
6	विशुद्ध	कंठ	सोलह	16	त्रिताल

उपर्युक्त तालों की लय और मात्राएँ ब्रह्माण्ड में स्थित हैं, उसी के अनुरूप इनका सञ्चालन कायपिण्ड में होता रहता है। ध्रुवपद के साथ अनाहत-चक्र, हृदय-स्थान, 12 पंखुड़ियाँ और 12 मात्राएँ ध्यान देने योग्य हैं। योगीजन 'अनाहत-नाद' की साधना करते हैं। उन्हे विविध प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनियाँ सुनाई देती है। सांसारिक संगीतज्ञ 'आहत-नाद' की साधना द्वारा अनाहत तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। शाक्त-तंत्र में तीन प्रकार की कलाएँ मानी गई हैं। सौरी कलाएँ बारह, चन्द्र कलाएँ सोलह और आग्नेयी कलाएँ दस हैं। कायपिण्ड में इनका स्थान क्रमशः हृदय, कंठ और नाभि हैं। इन तीन स्थानों के तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु व महेश है और तीन देवियाँ हैं जिन्हें महाशक्ति कहा जाता है, जिनके नाम हैं—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। भारतीय संगीत को ये शक्तियाँ स्वर, लय और शब्द-शक्ति के रूप में गतिमान करती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राकृतिक लय का सम्बन्ध संगीत में उपयोग की जाने वाली ध्रुवपद (चारताल) की लय से भी है।

भारतीय संगीत के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए इन प्राकृतिक तत्वों को समझना भी आवश्यक है। इस प्राकृतिक प्रभाव के कारण ही ध्रुवपद शैली सर्वश्रेष्ठ मानी गई है, जिसमें सृष्टि के प्रत्येक सचराचर को प्रभावित करने की शक्ति है।

सहायक-ग्रंथ

1. संगीत रत्नाकर
2. बृहद्देशी
3. संगीत दर्पण
4. संगीत रहस्य
5. नाद योग
6. शाक्त तंत्र
7. कला दर्शन पत्रिका
8. संगीत मासिक
9. कल्याण मासिक

संगीत : मेरी दृष्टि में

—रवीन्द्रनाथ ओझा

मित्रों, मैं कोई संगीतकार नहीं हूँ, न गायन का ज्ञान है, न वादन का, न ही संगीत की शास्त्रीय सूक्ष्मताओं का। मैं तो सिर्फ एक कवि-रचनाकार हूँ, एक अध्यात्मवादी कवि-रचनाकार जिसकी जीवन, जगत, जगदीश के विषय में अनुभूति-आश्रित अपनी पुष्ट विचारणाएँ हैं, धारणाएँ हैं। मैं मानता हूँ समस्त सचराचर जगत् एक ही स्रोत से उद्भूत हैं, एक ही ऊर्जा-चैतन्य से। यही महोर्जा, यही परम चेतना स्वेच्छानुसार अपनी लीला-प्रसारण हेतु नाना रूपाकार ग्रहण करती है। इस नाना नामरूपात्मक जगत् में एक ही चेतना सतत सक्रिय है, एक ही सत्ता सतत सर्कमिका। हम सभी उसी ऊर्जा या चेतना से निकलकर, एक लम्बी यात्रा के बाद उसी ऊर्जा या चेतना में पुनः समाहित-सन्निविष्ट हो जाते हैं, उसी में विलयित-विसर्जित।

मैं कवि हूँ यानी मेरी भावनाओं की इतनी व्यापक विस्तारणा है कि उसमें समस्त सचराचर जगत् समाहित हो जाता है। जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सभी तरह के प्राणी-पदार्थ मेरी करूणा, मेरी सहानुभूति, मेरी समवेदना के जोरदार हकदार हो जाते है और मैं उनके दुःखदर्द, हर्ष-उल्लास में हिस्सा लेकर उनकी भावनाओं को, उनकी मनः स्थितियों को अभीप्सित अभिव्यक्ति देता हूँ। मै भाव लोक का स्वामी हूँ, हृदय-लोक का सम्राट।

शब्द अपना पूर्ण अर्थ-वैभव उद्घाटित कर सके, यही मेरा प्रयास होता है। मैं शब्दों में अपनी प्राणोर्जा जो भरता हूँ अपना साधना-अर्जित चैतन्य इस तरह की उनमें मंत्रोर्जाकी संचारणाशक्ति जागृत हो उठे, शब्द ब्रह्ममयता-ब्रह्मत्व अर्जित कर लें।

मैं पूरी तरह भारत का हूँ, सर्वांशतः समग्रतः भारतीय। भारत मात्र एक भूमि खण्ड नहीं है, यह एक भाव है, परिवेश है, साधना है, संदेश है। भारत एक दर्शन है, दृष्टि है, एक अनुभव है, आदर्श है, अनुभूति है। भारत एक अन्वेषणा है, गवेषणा है, दिव्यैषणा है—यह एक तत्वमीमांसा है, सत्यशोधन है, सत्यसंधान है। भारत में ही अध्यात्म और काव्य का ऐसा अद्भुत अपूर्व समन्वय घटित हुआ है जो अन्यत्र दुर्लभ है या फिर असम्भवप्राय। उपनिषद् जो भारत की साधना-जिज्ञासा की सर्वोत्तम उपलब्धि है, काव्य और अध्यात्म की सर्वोच्च सिद्धि भी है। उपनिषद् ही भारत के सम्पूर्ण-ज्ञानवैभव, साधन-शोधन, दृष्टि-अनुभूति का अक्षय-अशेष कोष है। मैं भारत की इसी सत्य सनातन, प्राचीन पुरातन चैतन्य-धारा से ही अपनी अन्तरात्मा को अभिषिक्त कर अपने जीवन की धन्यता महसूस करता हूँ।

जहाँ काव्य और अध्यात्म का एक साथ आगमन होता है वहाँ संगीत की उपस्थिति अनिवार्य रूप से सिद्ध हो जाती है—काव्य और अध्यात्म संगीत की अनुपस्थिति में प्रायः अधूरा है, असम्पूर्ण ही है। और जहाँ संगीत की चर्चा हो वहाँ कला की भी चर्चा आवश्यक हो जाती है। कला को समझे-जाने बिना हम संगीत को क्या समझ पायेंगे? अतः हमारी यह छोटी सी लेखन-यात्रा कला से प्रारम्भ होकर संगीत में अपनी स्वाभाविक परिणति प्राप्त कर लेगी।

कलाएँ हमारे अन्तर्वर्ती लुप्त सौन्दर्य बोधको जागृत उद्दीप्त करती हैं, उसे जीवन्त-क्रियाशील बनाती हैं, उसका संवर्धन-संपोषण करती है। कलाएँ हमें एक अलौकिक तुष्टि रस प्रदान करती हैं; हमारी चेतना का, हमारी संवेदना का विस्तारण करती हैं। मानव प्रकृति से ही सौन्दर्य प्रेमी होता है सौन्दर्यपिपासु, रस-लुब्धक और उसकी इसी जिज्ञासा-पिपासा-लिप्सा-अभीप्सा की पूर्ण परितृप्ति हेतु कलाओं का उद्भवन-उत्कर्षण घटित होता है। कला की साधना मानवीय सौन्दर्यबोध का परिष्कृतीकरण है, उदात्तीकरण है। कला की साधना अहं के विसर्जन,अहं के विगलन की साधना है। यह भावों के प्रसारण और विस्तारण की साधना है। यह ठोसत्व से तारल्य की ओर, स्थूलत्व से सूक्ष्मत्व की ओर

प्रयाण है, यह 'भूत' का 'भाव' में बदल जाने का प्रयास है, अभ्यास है, साधना है। यह हिमालय का सुरसरिता में पिघल जाना है, पत्थर का प्रवाह हो जाना है। कला की साधना शान्त-सीमित से मनुष्य को मुक्ति दिलाकर उसे असीम-अनन्त की ओर उन्मुख-अग्रसर कर देना है, उसे क्षुद्र-संकीर्ण से महत-विराट की ओरे ले जाना है। कलाएँ विराट का, वृहत् का, महान का, महत् का संदेश लेकर आती हैं। वे अनन्त की ध्वजवाहिका है, असीम की बिगुलवादिका मानव को पशुत्व व मनुष्यत्व के धरातल से खींचकर उसे देवत्व-ब्रह्मत्व के शीर्ष स्थान पर संप्रतिष्ठित कर देना ही कलाओं का चरम उद्देश्य है, और इसी में निहित है उनकी परम सार्थकता।

कलाओं में भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं काव्य और संगीत। काव्य शब्दों की साधना हैं, संगीत स्वरों की। काव्य अर्थों की साधना है, संगीत लयों, रागों, सुरधुनों की। काव्य में भी गीत ही प्रमुखता प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि उनमें सांगीतिक तत्व सन्निविष्ट रहते हैं। गीत संगीत का ही सहोदर माना जायेगा। गीत में काव्य और संगीत का शिखर सामरस्य घटित होता है इसी से उनकी मर्मस्पर्शिता, हृदयग्राहिता स्वतः सहजमेव सिद्ध हो जाती है।

कहते हैं, काव्य अपनी प्रकृष्ट स्थिति में, अपने दिव्यतम क्षणों में, प्रार्थना या स्तोत्र या मन्त्र की प्रकृति-संस्कृति, ऊर्जा-संचेतना ग्रहण कर लेता है। श्रेष्ठतम काव्य प्रार्थना है, स्तोत्र है, ऋचा है, मंत्र है। श्रेष्ठतम काव्य विराट चेतना का साक्षातीकरण है, आत्मसातीकरण है। यह विराट चेतना का आलिंगन है। भूमा चेतना से गठबन्धन है। श्रेष्ठतम काव्य में संगीत के गुणवैशिष्ट्य स्वयंमेव आ जाते हैं, श्रेष्ठ काव्य संगीत के सम्मोहन से सराबोर हो उठता है। ऋग्वेद की ऋचाएँ, सामवेद के गान, उपनिषदों के मंत्र ऐसे सिद्धस्थल हैं, ऐसे महातीर्थ जहाँ काव्य और संगीत एक दूसरे की गरिमा को शतसहस्रगुणा संवर्धित करते हुए शिखर-श्रेष्ठत्व की संसिद्धि सर्मजित कर लेते हैं।

अन्ततोगत्वा जीवन के सारे अमृत रस, सारे भावसंगीत आत्मा के ही अमृतकुण्ड से प्रस्रवित होते हैं। काव्य या संगीत का श्रेष्ठतम अवदान इसी आत्मिक अमृत से अभिषिक्त होता रहता है। जो साधक-कलाकर इस आत्मा के अमृत-कुण्ड का जितना ही नैकट्य-लाभ कर पाता है, वह उतना ही रसभिषिक्त, रसप्रदायी हो पाता है। आत्मा के सततप्रवाही अमृतनिर्झर का सान्निध्य ही साधक को सारा अमृतरस प्रदान करता है—जिस अमृत रस की मधुर स्रोतस्विनियाँ होती हैं उनकी कला रचनाएँ या भावाभिव्यक्तियाँ। दिव्य उदात्त कृतित्व इसी स्थान या स्थिति से समुद्भूत-प्रसूत होता है—इसी गंगोत्री से पापताप-संताप हारिणी गंगा का समुद्भव संभव सुनिश्चित होता है।

भावों को आन्दोलित-उद्वेलित करने में काव्य का कोई जोड़ नहीं और रसवर्षण, माधुर्यप्रसारण के क्षेत्र में संगीत का कोई सानी नहीं। मगर काव्य में पढ़ना है, ठीक से पढ़ना है, शब्दों के विविध अर्थों को जानना है, उनकी विशिष्ट संदर्भगत अर्थछवियों, अर्थछायाओं को ग्रहण करना है अलंकारों, बिम्बों, प्रतीकों, मिथकों, ऐतिहासिक पौराणिक प्रसंगों का जानकार होना है, तभी भरपूर काव्यरस प्राप्त हो सकेगा, तभी काव्य के समस्त वैभवोत्कर्ष समुद्घाटित-समाधिगत हो सकेंगे।

मगर भई, संगीत, मत पूछिए—एक मामूली अनपढ़; देहाती गीत गायक जब हमें आत्मविभोर कर देता है, अपने कंठस्वर की मिठास से जब हमें भावों-भावनाओं, यादों-यादगारों, स्मृतियों-सपनों की अलौकिक दुनियाँ में प्रक्षेपित-स्थानान्तरित कर देता है, उसके गीतस्वर, उसकी स्वरलहरी उसकी विरह-वेदना की मर्मवेधिनी लहरियाँ-सारी की सारी, हमारी अन्तर्सत्ता में, हमारे मन-मानस में, हमारी नसनस में अन्तर्व्याप्त हो जाती हैं, पोर-पोर में समा जाती है तो जहाँ मजा हुआ गायक, सधा हुआ सिद्ध संस्कारशील संगीतकार हो, सूक्ष्मचेता, सूक्ष्मवेत्ता गायक-वादक हो, वहाँ का क्या कहना!

ऐसे तो हर भाव-भावना, हर अनुभव-अनुभूति की शक्तिको, उसके प्रभाव-प्रवाह को तीव्रतम त्वरिततम तीक्ष्णतम करने के लिए संगीत की आवश्यकता पड़ती है, पर, खासकर आध्यात्मिक दृष्टि के प्रवर्तन-प्रसारण, आध्यात्मिक भावानुभूति के उन्मेष-स्फूर्ति के उद्भवन-विकसन में संगीत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका हैं संगीत का बहुमूल्य योग-

दान है। संगीत का माधुर्य कुछ ऐसा होता है उसकी लय-कारी, उसका आलाप, उसका नाद-सौंदर्य, उसका स्वर-सम्मोहन, उसकी सुरधुन, उसकी रागरागिनी उसकी भावाभिव्यक्ति कुछ ऐसी जोरदार जबरदस्त होती है कि भीतर-बाहर सब उसके माधुर्यरस से परिप्लावित हो उठता है, स्वल्प समय में, अत्यल्प काल में ही एक विलक्षण अलौकिक रूपान्तरण घटित हो जाता है, मानव-चेतना के स्तर पर एक अद्भुत क्रान्ति घटित हो जाती है, चेतना रस-आनन्द के अलौकिक जगत में, भाव-विमुग्धता अथवा भावविभोरता के अद्भुत लोक में छलाँग ले लेता है, उन्मुक्त उड़ान भरने लगता है। यह संगीत का ही प्रभाव है कि आध्यात्मिक जीवन की पूर्णता के लिए, श्रेष्ठतर आध्यात्मिक सिद्धि-लब्धि के लिए भजन-कीर्तन का, प्रार्थना-स्तोत्र का शास्त्रों में इतना महिमा-गान हुआ है।

मैंने भजन-कीर्तन के प्रभाव को देखा है प्रार्थना और स्तोत्र-गायन के महत्व को, सामर्थ्य को अनुभूत किया है—अध्यात्म जीवन में ज्योति-जागरण के लिए, उसकी शक्ति-सामर्थ्य, उसकी महत्वपूर्ण भूमिका को गंभीरता से महसूसा है। उदात्त भाव जगाने के लिए, आध्यात्मिक भावों की प्रगाढ़ता के लिए भजन-कीर्तन से बढ़कर कुछ भी नहीं और भजन-कीर्तन की सफलता उसकी सांगीतिक वैभवशालिता में ही निहित है, उसकी सांगीतिक मिठास में ही संनिहित है। मेरी दृष्टि में संगीत का सर्वाधिक महत्व है क्योंकि विना संगीत के सर्वसाधारण से लेकर अति चेतना-शक्ति सम्पन्न व्यक्तित्व का भी आध्यात्मिक जीवन पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकेगा। वह जीवन के दिव्य क्षणों की दिव्यानुभूतियों से वंचित रह जायेगा—उसमें परम भावरस की संचारणा न हो सकेगी—वह परम माधुर्य के आनन्दरस से वंचित रह जायेगा।

अपनी विराट प्रभावशालिता में, अपने दिव्य सम्मोहन में, अपने जादुई प्रभाव में संगीतकार का कोई जोड़ नहीं। वह तो लयों का स्वामी है स्वरों का सम्राट है, भावों का राजा है, राग-रागिनियों का अधिपति। अपनी लयकारी से, अपनी सुरधुनों से, अपने स्वरों के आरोह-अवरोह से, अपने स्वरों की गति-अगति-प्रगति एवं आविर्भाव-तिरोभाव से स्वरों का इन्द्रजाल बुन सकता है, रसका, भाव का एक वितान तान सकता है रसवर्षण कर, माधुर्य वृष्टि कर श्रोतृवृन्द को क्षणभर में सम्मोहित कर सकता है, उसके सारे स्थूलत्व को, ठोसत्व को, प्रभुत्व-पत्थरत्व को तारल्य में, द्रावण्य में, भाव में बदल सकता है। वह पार्थिवता को अपार्थिविता में, लौकिकता को अलौकिकता में, लघु को विराट में, मानवत्व को दिव्यत्व में, अभाव को भाव में, शुष्क-वीरान को सरस उद्यान में बदल सकता है। संगीतकार तो जादूगर होता है—संगीतकार के पास संगीत की एक ऐसी ऐश्वर्यमयी कला है जो अचेतन में चेतना भर सकती है, जड़त्व में स्फूर्ति जगा सकती है, पर्वत में भावना भर सकती है, चट्टान को भावुक बना सकती है, करुणार्द्र कर सकती है, सागर को उद्वेलित कर सकती है, दिव्यता को आमंत्रित अवतरित कर सकती है, मरुभूमि का स्वर्ग में, श्मशानको उद्यान में बदल सकती है, और मरणोन्मुख जीवन को अमृतोन्मुखी बना सकती है।

संगीत का अमृतरस पान किए बिना जीवन अधूरा है—संगीत में जो रसमाधुर्य है, वह अन्यत्र दुर्लभ है, असंभव है। इसीलिए मैं छककर संगीत का अमृतरस पान करना चाहता हूँ। मैंने जीवन में सब कुछ देखा है—सब तरह की कलाओं का स्वाद-रस लिया है, हर तरह के भावों, हर तरह की अनुभूतियों से गुजरा हूँ—सबके साथ मेरा संचरण-सहचरण संभव हो सका है मगर संगीत के दिव्यतम स्वरों में, लयों की अमृतवर्षिगी धारावली में आत्मा को, सम्पूर्ण व्यक्तित्व को संतृप्त करने की जो सामर्थ्य-संभावना देखी, वह अन्यत्र नहीं।

मैं संगीत के माधुर्य में डूबकर विराट में खो जाना चाहता हूँ, मैं भावों के निस्सीम नीलांचल में निर्बन्ध, निर्मुक्त उड़ान भरना चाहता हूँ, मैं संगीत के रससागर में अवगाहन कर अपने अस्तित्व को विसर्जित कर देना चाहता हूँ, मैं अपनी समस्त चारदीवारी को, कारा को ध्वस्त कर देना चाहता हूँ, समूची काई को धो देना चाहता हूँ, जनम-जनम के संस्कार जनित गुत्थियों, गाँठों को खोल देना चाहता हूँ, अपने अस्तित्व की, अपने सूक्ष्म शरीर की सारी गाँठें (Complexes) तोड़ देना चाहता हूँ—अपनी अन्तर्सत्ता में, अपने अन्तरस्थ आत्मिक जगत् में आत्मा का दिव्य अमर संगीत सदा-सर्वदा गुञ्जित अनुगुञ्जित करना चाहता हूँ—आत्माको

आत्मा के संगीत से आप्लावित-ओतप्रोत कर देना चाहता हूँ। मैं उस महारस में, उस अनन्त लयात्मकता में अपने को खो देना चाहता हूँ, मिटा देना चाहता हूँ। संगीत ही, मुझमें यह रूपान्तरण ला सकेगा, संगीत ही मेरी आंतरिक तृषा को मिटा सकेगा, मेरी आत्माको तृप्त-संतृप्त कर सकेगा, मेरे सपनों को साकारत्व प्रदान कर सकेगा, मेरी आकांक्षाओं अभीप्साओं की संपूर्ति कर सकेगा—ऐसा मेरा विश्वास है, ऐसी मेरी श्रद्धा है।

जब संगीतकार स्वयं उस आकांक्ष्य स्थिति का निर्माण कर पायेंगे, जब वे स्वयं उन दिव्यानुभूतियों से दीप्त भास्वर हो उठेंगे, जब वे स्वयं उस महारस का, उस अमृतरस का पान कर पायेंगे, जब वे स्वयं आत्मा के उस अमर संगीत को सुनने लगेंगे और उस संगीत-स्रोत या संगीत-प्रवाह से अपने को जोड़ लेंगे तभी वे मुझे या औरों को उस अमृत की स्वर्गिक मिठास का दिव्य वरदान दे सकेंगे, तभी वे उस महारस के, उस महालीला के अक्षय माधुर्य-कोष का द्वार खोल सकेंगे—इसी आशा-विश्वास के साथ मैं एक अदना असंगीतज्ञ, कवि रचनाकार, आप समस्त सुधी, सुविज्ञ, सुबुद्ध संगीतकार समाज से सविनय सश्रद्ध, क्षमा-याचना के साथ विदा लेता हूँ।

□

इस सृष्टि को वेदों में 'सप्ततन्तुमय यज्ञ' कहा गया है मन, प्राण और पञ्चमहाभूत इन सात तत्त्वों से ही सृष्टि बनी है। इन पञ्चभूतों को वेद में वाक् भी कहते हैं। मन, प्राण और वाक् सृष्टि के ये ही कारण हैं। उपनिषदों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह आत्मा—वाङ्मय, प्राणमय और मनोमय है। तात्पर्य यह है कि जितनी भी अभिव्यक्त-सृष्टि है उसके मूल में प्रज्ञा या मनस् तत्त्व, प्राणतत्त्व, तथा पञ्चभूत इनकी ही सत्ता है। मन, प्राण तथा वाक् का त्रिक ही प्राकृतिक रूप में सत्त्व, रज और तम कहे जाते हैं।

सृष्टि की वैदिक कल्पना त्रिक पर आश्रित है। तीन लोक, तीन वेद, तीन वर्ण, तीन छन्द, तीन शुक्र, तीन ज्योतियाँ, तीन मात्राएँ आदि अनेक रूपों में इस त्रिक-संघात की व्याख्या हुई है 'मैत्रायणी उपनिषद्' में इसी त्रिक की सारगर्भित व्याख्या है कि—ये जो अ-उ-म् अक्षर हैं; ये ही त्रिपाद ब्रह्म की भास्वतो तनु हैं जो 'ओम्' है। अग्नि, वायु और आदित्य इनका नाम भास्वती तनु हैं। स्त्रीलिंग, पुंल्लिग और नपुंसकलिंग यह लिंगावती तनु है; ब्रह्मा, और विष्णु अधिपतिवती तनु हैं। ऋक्, यजु और साम यह विज्ञानवती तनु हैं। ब्रह्माण्ड में प्राण, अग्नि और सूर्य यह त्रिक प्राणवती तनु है। भू, भुवः, स्वः यह लोकवती तनु है। भूत, भव्य, भविष्यत् यह कालवती तनु एवं अन्न, आप्, चन्द्रमा यह अध्ययनवती तनु है, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आह्वनीय (पूर्व) यह मुखवती तनु तथा बुद्धि, मन, अहंकार यह चेतनवती तनु है। पिण्ड में प्राण, उदान, व्यान, यह प्राणवती तनु है। ये सब प्रजापति के ही रूप हैं।

—डॉ॰ विमला मुससगाँवकर

दास्ताने तवायफ़ :
ठुमरी और दादरा की पर्याय ये संगीत-साधिकाएँ

—गजेन्द्र नारायण सिंह

ठुमरी-दादरा जैसी उपशास्त्रीय गान विधाओं की चर्चा करते ही हमारे समक्ष एक विशेष प्रकार के संगीतजीवियों की छवि उभरकर आ-जाती है; जिसे हम तवायफ़ के नाम से जानते हैं। आमतौर से इन तवायफ़ों के विषय में सही जानकारी नहीं रखनेवाले अनर्गल कर बैठते हैं और इन्हें हेय समझते हैं। ये गानेवालियाँ ठुमरी-दादरे जरूर गाती थीं पर संस्कारवान होती थीं, इनका अदब-कायदा तहज़ीब, बोली-बानी मजलिसी रंग-ढंग नियम-पाबंदी का भी लिहाज करता था। संगीत की एक शानदार परम्परा कोठे से जुड़ी रही और इस उन्नत परम्परा की वाहिका रहीं ये संगीत-साधिका तवायफें। कोठों पर संगीत की न केवल अभिनव शैलियों का श्रृङ्गार हुआ वरन् वाद्य-यंत्रों का भी विकास हुआ। सारंगी तो इन कोठों की अभिन्न अंग रही।

वारांगना-नगरवधू-तवायफ़, भारतीय कला और संस्कृति की पृष्ठपोषक ये रूपसियाँ सदियों से संगीत-प्रेमियों के जीवन में माधुर्य घोलती रहीं। न केवल इतना ही बल्कि अपनी मेहमाँनबाजी, शिष्टाचार और सलीकेदारी की बदौलत कुलीन वर्गों में सम्मानित भी होती रहो। मुस्लिमकाल में गाने-बजाने वालियों के एक विशिष्ट सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ, जिन्हें हम तवायफ़ के नाम से जानते हैं। कहते हैं, नादिरशाह के क़त्लेआम के बाद दिल्ली की तबाही देखकर रंगीन और नाजुक मिज़ाज बादशाह मुहम्मदशाह रंगीला पर पागलपन के दौरे आने लगे। राग-रंग में हरदम डूबा रहने वाला इस रंगीला बादशाह को हठात् संगीत से नफ़रत हो गयी। उसने अपने हरम की उन तमाम रूपांगनाओं को निकाल बाहर कर दिया जिनकी स्वरमाधुरी और बांकी चितवन पर वह कुर्बान हो जाया करता था। कहते हैं, यहीं से कोठे पर मुजरा पेश करने का सिलसिला चला। "मुजरा" शब्द का अर्थ सलाम, आदाब होता है। मुगलकाल में नृत्य-संगीत प्रारम्भ करने के पूर्व फ़नकारा सलामी पेश करती थी। कालान्तर में मुजरा नाच-गाने के लिए व्यवहृत होने लगा और सामंत तथा रईसों की महफ़िलों में मुजरा पेश करनेवाली तवायफ़ कही जाने लगी। सामंतकालीन परिवेश में संगीत भी अभिजात्य संस्कार-मंडित हो गया। संगीत का शौक शरीफ और सम्भ्रान्त लोगों तक ही सीमित रहा। उनदिनों संगीत का दायरा छोटा अवश्य था, पर था गुणपारखी।

सामंतशाही भले ही कितनी क्रूर क्यों न हो, उसमें संस्कृति और कला के भरपूर भण्डार भरे हैं। समाज के इस वर्ग-विशेष में तवायफ जो बाई जी के नाम से भी जानी जाती थी उनकी बड़ी इज्ज़त थी। ये तवायफें न केवल संगीत-प्रवीण वरन अदबोतहज़ीब की मुजस्सिम बुत हुआ करती थीं। यही कारण है कि उनदिनों शादी-ब्याह, मुंडन-उपनयन से लेकर हर सामाजिक संस्कार तथा तीज-त्यौहार पर इन गानेवालियों की महफिलें जमती थीं। संगीत ईश्वर का प्रताप और सरस्वती की देन है। और इस धरा पर इसके सिरजनहार ऋषि-मनीषी तथा दरवेश-फ़कीर हो गये। लेकिन संगीतकला को सम्मान, प्रोत्साहन और प्रसार दिया सामंतो ने तो उसे सजाया-संवारा, सलोना बनाया तवायफों ने। ये तवायफ़ें उच्चकोटि की कलावंत हुआ करती थीं। संगीत ही इनकी आजीविका का साधन था और साधारणतया ये देह-व्यापार नहीं करती थीं। या तो अपने साजिंदों में से किसी के साथ ज़िन्दगी गुजार देतीं या किसी अमीर-उमराव की होकर रह जाती थीं। बड़ी शानो-शौकत का जीवन बसर करती थीं ये रूपसियाँ और ऊँचे खानदानों में इनका बड़ा रुतबा था।

मौसीक़ी की ये अदाकारा वैसे तो गाने-बजाने की हर विधा में निपुण हुआ करती थीं, पर ठुमरी-दादरा व गज़ल जैसी उपशास्त्रीय विधाओं की अदायगी में ये गोया जान उड़ेला करती थीं। इनके कण्ठ-स्वरों में एक भाववाही गेय विधा के रुप में ठुमरी और दादरा अत्यधिक जनप्रिय हुई। संगीत का मूल वैसे तो आध्यात्म में बसा है। पर लोक का छोड़ केवल परलोक की चर्चा करना बेइमानी लगती है।

सौंदर्यभाव और श्रृंगारिक पुट के बिना कला बेजान लगती है। ठुमरी को 'सैंया-गुइयाँ' वाला गाना कहकर जो लोग इसे तुच्छ बताते हैं वह शायद भूलते हैं कि विरह, पीड़ा, वात्सल्य, श्रृंगार आदि मनोभावों का निरुपण ठुमरी द्वारा बड़ा मर्मस्पर्शी होता है। यही वजह है कि जब ध्रुपद और ख़याल रस और भाव से च्युत हो गये तो रसभरी ठुमरी का आविर्भाव हुआ। ठुमरी-दादरा को परिभाषित करते हुए किसी ने वजा फरमाया है, 'प्रणय की कोई छोटी सी चित-चोर कहानी, प्रणयिनी की बलखाई जुल्फों में प्रेमी के तड़पते प्राण।' अर्थात एक भाववाही सांगीतिक विधा के रुप में ठुमरी प्रतिष्ठित हुई।

हिन्दुस्तानी संगीत के अन्तर्गत 'छोटी चीज' के नाम से मशहूर ठुमरी-दादरा गानेवालियाँ वैसे तो देश के हर भूभाग में हुई पर बनारस, लखनऊ, आगरा, इलाहाबाद, गया, पटना और कलकत्ता इस हुनर में मँजी हुई तवायफ़ों के गढ़ रहे।

धूसर अतीत के गर्त में गड़े अब इन गायिकाओं के स्मृति-अवशेष ही रह गये हैं। पूरब अंग की ठुमरी जमी लखनऊ में पर पुष्पित-पल्लवित हुई बनारस और गया की सोंधी माटी में। इन ठुमरियों में टप्पे की मुरकी और खटके भरी छोटी-छोटी तानों तथा पूर्वी उत्तर-प्रदेश और बिहार के आंचलिक धुनों के समावेश से जहाँ अभिजात संस्कार टपकता, वहीं ग्रामीण अल्हड़ता और यौवन की तरुणाई लावण्य फूटता नजर आता है। लोकधुनों के सम्मिश्रण से होरी, चैती, कजरी, पूरबी, सावन आदि का साहचर्य मिला इस ठुमरी को, जिससे उसमें और भी निखार आया।

बनारस उस जमाने में महफिल-संस्कृति का केन्द्र था। यहाँ के रईस कोठों पर कम ही जाते थे। इनके घरों एवं बाग-बगीचों में महफिलें जमती थी। यों तो ठुमरी हर मह-फिल की रानी थी। पर बनारसी महफिलों की पसंदीदा चीज थी, दादरा। दादरा के अलावे पूरबी, चैती और कजरी भी खासतौर से सुनी जाती थी।

पुरानी तवायफ़ों में भारतेन्दुकालीन हुस्ना बड़ी प्रसिद्ध थी। टप्पा गायन की वह विशेषज्ञ मानी जाती थी। काशी के रईस और कलाविद् रायकृष्णदास जिन्होंने अपने छुटपन में हुस्ना को देखा था, के अनुसार वह कविता भी करती थी। भारतेन्दुजी ने उन्हें गीतगोविंद के पद स्वरबद्ध कराये। वह अच्छी शायरा थी और उनका 'दीवान' छपा है। उनके कलाम का नमूना देखिए—

'आता यही है जी में कि बीमार-ए-ग़म बनूँ,
वो पूछने आये कि हुस्ना को क्या हुआ ?
मेरी वो इल्तिजा कि तड़पता हूँ हिज्र में,
जालिम का वो जबाव कि फिर क्या करे कोई।'

वेश्याओं के सुधार के लिये गांधीजी की प्रेरणा से काशी में "तवायफ़ सभा" की स्थापना की गयी जिसकी अध्यक्षा हुस्नाबाई निर्वाचित की गयी। इस सभा में उसने जो अध्यक्षीय भाषण दिये उससे पता चलता है कि वह एक विदुषी महिला थी। उनके कई ग्रामोफोन रिकार्ड बने जिसे सुनकर पता चलता है कि वह न केवल टप्पा गाने में माहिर थी अपितु ठुमरी, दादरा, होरी, चैती, कजरी और गज़ल, इन सभी उपशास्त्रीय गानविधाओं में प्रवीण थी। 1890 ई० में इनका पहला ग्रामोफोन रिकार्ड बना।

हुस्ना, विद्याधरी, राजेश्वरी और टामीबाई ये सभी समकालीन थीं। इसी काल में गफूरनजान, मुन्नाजान और सरस्वतीबाई हो गयीं। सरस्वती बनारस की श्रेष्ठ नर्तकी थी।

पुरानी तवायफ़ों में बड़ी मैना अति ख्यातिवान हुई। वह गाँजा पीती थी और गाँजे का लप्पा लगा कर ही गाती थी। बुढ़वा मंगल में वह सबेरे रामनगर में गाती थी और इस पर हजारों लोगों की भीड़ खड़ी सुनती थी। वह काशी-नरेश के दरबार में मुलाजिम थी। रतीबाई नामक प्रख्यात गायिका की भतीजी थी मैना।

मैना की ही पुत्री राजेश्वरी थी जो हुस्ना और विद्या-धरी के साथ 'महफ़िले रौशन' कहलाती थी। सिद्धेश्वरी देवी मैना की दौहित्री थी और राजेश्वरी की भतीजी। राजेश्वरी के साथ भैरो सहाय जी तबले और सियाजी महाराज सारंगी पर संगत करते थे। हुस्ना और विद्याधरी की भांति ही वह खास पूरब अंग की बनारसी ठुमरी गाती थी।

विद्याधरीबाई और गौहरजान की ख्याति किवदंतियों की अप्सराओं-गंधर्व जैसी थी। शायद ही कोई रियासत

हो जहाँ उसे मान-सम्मान न मिला हो। ख़याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, गज़ल, भजन सभी कुछ दक्षतापूर्वक गाती थी। वह काशीनरेश ईश्वरीनारायण सिंह की आश्रिता थीं।

इन्होंने मुख्य रूप से राम सुमेर जी (सुमेरु उस्ताद), रामसेवकजी, दरभंगा के खाँ साहब, नजीर खाँ तथा वशीर खाँ तथा और अन्त में दरगाही महाराज तथा मिठाई-लालजी से तालीम हासिल की। तीस-चालीस की उम्र में ही वह पूरे देश में नाम कमा गयी। कलकत्ते की गौहर-जान, आगरेवाली मलकाजान और लखनऊ की अच्छनबाई इनकी सहेलियाँ थीं।

गज़ब की गानेवाली थी विद्याधरीबाई। उन सा 'गीत-गोविंद' के पदों का गान करनेवाला आधुनिक भारत में शायद ही दूसरा कोई हुआ हो। स्वर-माधुर्य और शास्त्रीयता दोनों का निर्वाह उसमें बखूबी होता था। गीत गोविंद के गान और अभिनय पर अद्भूत अधिकार विद्याधरी को काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान पंडित दामोदर गोस्वामीजी के सत्संग से प्राप्त हुआ। गोस्वामीजी ललितकलाओं के मर्मज्ञ थे।

बड़ी मैना, हुस्ना और विद्याधरी की ही समकालीन बनारस की सुग्गनबाई और मंगूबाई 'छोटी चीजों', की बेहतरीन अदाकारा थीं। मंगूबाई की ठुमरियों के माधुर्य का आनन्द लेने दूर-दराज से संगीतरसिक रईस पहुँचते थे। 'कौन गली गयो श्याम' की जब वह टेक भरती तो उनके विलक्षण बोल-बनाव पर श्रोता कुर्बान हो जाते। सुग्गनबाई की पैनी तानें सुननेवालों के दिलों में चुभन पैदा करती थी। क्या, कमाल था कि हर रूपजीवा के गले में ऐसी सिफत हुआ करती कि सुननेवाले लट्टू हो जाया करते थे।

काशीबाई, सिद्धेश्वरी और रसूलन की पीढ़ी की थी। पर उम्र में इनसे बड़ी थी। चौथे दशक में इन्होंने बड़ा नाम पैदा किया। गाती तो लगता दीवार से सदा निकल रही है। गया के लब्धप्रतिष्ठ हारमोनियमवादक सोनी महाराज की वह माशूका थी। बुढ़वा मंगल के अवसर पर जब गंगा में बजरे पर सिद्धेश्वरी, रसूलन और काशीबाई की तिकड़ी जमती तो सुननेवाले बेसुध हो जाते। मैंने काशीबाई की ध्वनिमुद्रिकाओं में सुना हैं। बड़ा खिचाव थ इनके सुरों में सन् 1929 में इनके ग्रामोफोन रिकार्ड बने।

बड़ी मोतीबाई ठुमरी गाने के लिये विशेष रुप से प्रसिद्ध रही। किसी जमानेमें इनकी ड्योढ़ीपर दरवान बैठा करता और हर कोई प्रवेश नहीं पा सकता था। इनका जन्म बिहार के दरभंगा शहर में निरंजन राय के घर 10 अक्टूबर, 1891 ई० में हुआ। आपने गायन की शिक्षा उस समय के कई विख्यात गुरुओं से प्राप्त की जिनमें सियाजी महाराज, बग्गर प्रसाद मिश्र, जालपा प्रसाद मिश्र, मिठाई-लालजी के नाम उल्लेखनीय हैं। ठुमरी के शहंशाह मौजुद्दीन खाँ की आप पट्टशिष्या रहीं। अपने उस्ताद के प्रति बड़ी मोतीबाई का समर्पणभाव ऐसा था कि मौजुद्दीन खाँ के इन्तकाल के बाद उनकी कब्र पर हर साल जन्मदिन के मुबारक मौकेपर खाँ साहब को बंदिश 'मन मोह लिया बाँसुरी बजा के....' गाती रहीं।

मैंने बड़ी मोतीबाई को, अस्सी की दहलीज जब वह पार कर चुकी थीं तब सुना। उस उम्र में भी टप्पे की एक तान ऐसी गयी कि बिजली कौंध गयी हो। गायकी में बड़ा ठहराव और चैनदारी थी। पुरानी चीजों की काफी मालोमात थी इनके पास। आज की गायकी और उस वक्त की गायकी के संबंध में पूछने पर कहती थीं, 'पहले की गायकी थोड़ी सीधी, मगर उसमें चोट थी। अब तो रातभर गाये, झ मेला ही झमेला है, असर नहीं।' बड़ी मोती बड़ी ही निष्ठावान और सरल हृदया थीं। पारम्परिक ढंग से ठुमरी-गान में इनकी 'कहन' विविधतापूर्ण पर ललित तथा सुकोमल हुआ करती थी। लय की सूझ-बूझ भी काबिले तारीफ़ थी।

मौसीक़ी के सुरीले आसमां पै कई जोहराएँ और मुश्तरी चमकीं। इनमें पटना, लखनऊ और आगरे की जोहराएँ और मुश्तरी बेमिसाल गानेवालियाँ हो गयीं। ठुमरी गाने में पटनावाली जोहरा अव्वल थी। 'कहन' ऐसी मनभावन कि इनकी एक बोलपर ठुमरी के उस्ताद तथा विख्यात हारमोनियमवादक भैयासाहब गणपतरावजी ऐसे लट्टू हुए कि गंडा बंधाने के लिए अपनी कलाई तक बढ़ा

दो। मियाँ अलीकदर के तबले की ठमक और बहादुर हुसेन की सारंगी की खनक से इनकी ठुमरियों में चार चाँद लग जाते थे। पटनावाली जोहरा की शोहरत की ऐसी धूम थी कि रामपुर नवाब के संगीतप्रिय दरबार में बुलाहट हुई। दरबार में ऊँच-नीच दिखाने की प्रवृत्ति कलाकारों में जबर्दस्त होती थी। जोहरा 'छोटी चीज' की माहिर उस्तानी थी। उनके रंग को धोना टेढ़ी खीर थी। नवाब के मुँहलगे संगीतकारों ने उसे नीचा दिखाने के लिए नवाब के कान भरे कि जोहरा से ख्याल गाने की तलब की जाय। पर जोहरा ने भी कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थी। तालीम उसकी पोख़्ता थी। ऐसा जमकर भूपाली का ख़याल सुनाया कि नवाब बाग-बाग हो उठे। खुश होकर नवाब ने कुछ मांगने को कहा। जोहरा के कलाकार को ठेस तो पहले ही लग चुकी थी। उसने बड़ी शान से अर्ज किया कि उसे दुबारा रामपुर दरबार में न बुलाया जाय। कहने को तो ये गानेवालियाँ तवायफें थीं, पर अपनी कला की नाक़द्री बर्दाश्त नहीं कर सकती थीं। दरभंगा के महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह की जोहरा समकालीन थी। दरभंगा राज से जोहरा को बड़ा मान-सम्मान मिलता रहा। कहते हैं कि क़ब्र बनवाने तक के लिए भी महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने रुपये दिये। आज भी पटनाशहर की मच्छरहट्टा गली में अखाड़ा के पीछे और औरंगजेबकालीन मस्जिद के सामने जोहराबाई पटनावाली की खूबसूरत क़ब्र सही रखरखाव के अभाव में काल के क्रूर थपेड़ों को बर्दाश्त करते हुए उन गुलाबी दिनों की दास्तान सुनाने के लिए विद्यमान है जब नवाबों और रइसों की नगरी अजीमाबाद (पटनाशहर) में जोहरा की महफिलें सुनने के लिए संगीतप्रेमी ही क्या संगीतकार तक मचल उठते थे।

लखनऊ नवाब गाजीउद्दीन हैदर के काल में जोहरा और मुश्तरी की गिजाए-रूहानी से महफिल गमक रही थी। मिश्री की डलिया जैसा गला और चुमता हुआ क़लाम। तवायफ शायरा भी हो तो वह दोधारा खंजर बन जाती है। उमरावजान उर्फ छुट्टन 'जोहरा' और कमरजान उर्फ मंझो 'मुश्तरी' उस जमाने में लखनऊ की डेरेदार तवायफ़ें थीं। सीतापुर के डेरेदार तवायफ़ों के खानदान की इमामबांदी उर्फ छोटीजान की कोख से जोहरा और मुश्तरी दो चमचमाते सितारों ने जन्म लिया। लखनऊ के खूबसूरत-खुशनुमा माहौल में जोहरा-मुश्तरी की जोड़ी परवान चढ़ने लगी। मशहूर शायर और खुशनवीस मीर आगा अली 'शम्स' की देखरेख में दोनों बहनें गजलगोई और शायरी में कमाल हासिल करती गयीं। पंडित विशनलाल 'तालिब' देहलवी ने जोहरा-मुश्तरी की तारीफ में कई कतायें लिखी जिनमें यह शेर उनकी हुनरमन्दी का इजहार करता है—

"सुआए शम्स जोहरा-मुश्तरी है,
बड़ी तो खैर है, छोटी खरी है।"

पर जोहरा-मुश्तरी तो रंभा-उर्वशी की जोड़ी थी। फिर मुसीकी से उन्हें महरूम कैसे रखा जाता। इमामबाँदी ने अपनी बेटियों को लखनऊ के प्रसिद्ध कव्वाल हैदरअली और उस्ताद घसीटे खाँ से तालीम दिलवाना प्रारम्भ किया।

अवध की महफिलें मशहूर थीं। नवाबी तामझाम के दिनों में लखनऊ हुनरमंद एवं कमसिन तवायफ़ों का केन्द्र बन गया। दिल्ली सल्तनत के पतन के बाद लखनऊ की सरगमीं में मूसीकी और तहज़ीब की खुशबू तेजी से फैलनी शुरू हो गयी। जोहरा-मुश्तरी के अलावे लखनऊ में धूमनबाई, हुसैनीबाई, अच्छनबाई, जली खुर्शीद, अद्धा बिग्गन, अल्लाहरखी मुनीरबाई और चूनेवाली हैदरजान जैसी आला दर्जे की गायिकायें हो गयीं। हैदरजान से सोज और मर्सिया सुनकर सुननेवालों की आँखें नम हो जाती थी। मुहर्रम के दिनों में इन्हें सुनने दूरदराज जगहों से लोग आते थे। इन्होंने एक नवीन ढंग की ठुमरी गान का आविष्कार किया था। यह शैली 1867 से 1898 ई० तक प्रचलित रही। सोजख्वानी और ठुमरी के साथ 'हैदर की भैरवी' बहुत ही प्रसिद्ध रही। अवध के नवाबी सल्तनत में तवायफ़ों द्वारा होरी गाने-सुनने का चलन भी रहा। नवाब आसफुद्दौला और नवाब सआदतअली खाँ के वक्त में दिलरुबा और उजागर नामक मीरासिने होरी गायन में अपना सानी नहीं रखती थीं। जानेआलम वाजिदअली शाह "अख्तरपिया" के जमाने में जोहरा, मुश्तरी, मुंसरिमवाली गौहर और चूनेवाली हैदरजान (ऊपर जिक्र हो चुका है) भी होरी गाने

में महारत रखती थीं जिनकी 'बंद' आज भी लखनऊ वालों को याद है'

'नंदलाल बिना कैसे खेलू मैं फाग,
ऐसी होली में लग जाए आग।'

लखनऊ की शीरीजान ठुमरी और टप्पे की कुशल गायिका थी। वह ग्वालियर की चन्द्रभागा की समकालीन थी। शीरी गायिका के साथ ही शायरा भी अच्छी थी। बाद में वह लखनऊ से कलकत्ते जा बसीं।

नवाब वाजिदअलीशाह के निष्कासित होने के बाद कलाकारों की नगरी लखनऊ वीरान हो गयी। यहाँ से गायिकाओं ने विभिन्न रियासतों और रजवाड़ों में जाकर पनाह ली। तूती और लाली नामक गायिकाओं ने रामपुर के नवाब हैदरअली खाँ और सआदतअली खाँ उर्फ छम्मन साहब जैसे कलापारखी ही नहीं उद्भट संगीतकार भी पैदा हुए। रामपुर रियासत में कानपुरवाली अमानीजान, जादी, झूमन, बंदीजान और शरकोबाई जैसी एक से बढ़-चढ़कर तवायफें थीं। महाराज जोधपुर के दरबार में खेतड़ीवाली नन्हींबाई की शान थी। वह तानरस खाँ की शिष्या थी। नागजी के मांड की वह अद्वितीय गायिका थी। ग्वालियर दरबार में चन्द्रभागा, मुन्नीबाई, नन्हीबाई और चुन्नाबाई नामक प्रख्यात गायिकायें हुईं। ग्वालियर महाराज और चन्द्रभागा-बाई के पुत्ररत्न गणपतरावजी थे जिन्हें ठुमरीगायक-गायिकाओं में उस्ताद का पद प्राप्त था। चुन्नीबाई की ठुमरी पर महाराजा जियाजीराव सिंधिया मोहित रहते थे। प्रसिद्ध बीनकार बंदेअली और चुन्नीबाई के निकाह की कहानी सभी संगीतप्रेमी जानते हैं। गुलाबीनगर जयपुर की रसकपूर तो रस की खान ही थी। ठुमरी गाने में वह असाधारण दक्षता रखती थी। जैसी सुरीली वैसी ही रूपवती। इनके अतिरिक्त लालन, खैरन, छुट्टो, शीरी, धनकुँवर, बिब्बो आदि तवायफें मशहूर हुईं। बीकानेर की अल्लाह जिलाइबाई राजस्थानी और मांड की अनुपम गायिका हुई—'केसरिया बालम आओ पधारे म्हारे देस....,' राजस्थान का यह मशहूर मांड अल्लाह जिलाइबाई का पर्याय हो गया है। चौरासी साल की उम्र में आज भी आवाज में वही खनक और सोज है।

पर संगीत में शास्त्रीयता तथा गुणवत्ता की दृष्टि से उस जमाने की गानेवालियों में आगरे वाली जोहरा (मृत्यु 1911 ई०) और मुश्तरी से बढ़कर गायिकायें नहीं हुई। ये दोनों ख्याल और छोटी चीजें दोनों ही गाने में ऐसी दबंग थी कि इनके सामने बड़े-बड़े घरानेदार गवैयों के पसीने छूट जाते थे। जोहराबाई के अन्तिम गायन का कार्यक्रम दिल्ली दरबार में 1911 ई० में हुआ था। 'बारवधू विवेचन' नामक पुस्तक में रियासत कपूरथला की एक जोहराबाई का उल्लेख मिलता है जो पक्का राग और गज़ल गाने में शोहरत हासिल कर चुकी थी। जोहराबाई आगरेवाली भी पक्का गाना और गज़ल गाने में पटु थी। मेरे विचार से कपूरथलावाली जोहरा ही आगरेवाली जोहरा के नाम से विख्यात हुई। वह मेहबूब खाँ दरसपिया के शिष्य आगरा के उस्ताद अहमद खाँ की शागिर्दा थी। आगरा घराना से सम्बद्ध होने के कारण बहुत संभव है जोहराबाई आगे चलकर आगरे वाली कहलाने लगी हो। वर्षों पूर्व गया के संगीतप्राण पं० गोविन्दलाल नकफोफा ने जोहराबाई आगरेवाली का गाया यमन-कल्याण का एक रिकार्ड मुझे सुनाया था। मुझे कहना पड़ता है कि ऐसा यमन-कल्याण मैंने आज तक नहीं सुना। बहुत अरसा पहले नकफोफाजी का बैठकखाने से ही इस रिकार्ड को सुनकर उस्ताद फैयाज खाँ और बड़े गुलामअली खाँ ने मुक्तकण्ठ से सराहना करते हुए कहा था, 'काश, हम भी ईमन में ऐसा मध्यम लगा पाते।' बंदिश का रख-रखाव और ऐसी साफ दानेदार-तेजतर्रार ताने कि सुननेवाले ठगे रह जाते। जोहरा की तानों के प्रशंसक प्रख्यात गायक पंडित नारायण राव व्यास भी थे। जोहराबाई का पहला ग्रामोफोन रिकार्ड 1911 ई० में बना। मैंने जोहरा की गायी एक चैती का रिकार्ड भी सुना है। इक हूक पैदा कर गयी मेरे दिल में। तड़प और अदाकारी ऐसी कि बस सुनते ही बनती थी। और मुश्तरी थी जिसकी आवाज बताशा थी। जब वह पीलू की ठुमरी छेड़ती तो सुनने वाले सँभलकर बैठ जाते। उसकी बहुचर्चित ठुमरी थी, 'जल भरूं कि रीती जाऊँ।' राग पीलू में वह सपाट तान लेते समय भैरवी की रिषम लगाती हुई फिसल जाती। जब तक समझनेवाले संभल पाते, वह हंसकर पीलू के स्वर

पर कायम हो जाती। इनकी पीलू ठुमरी इतनी मशहूर हुई कि प्रथम विश्वयुद्ध के बाद हिज मास्टर्स वायस ने उसका रिकार्ड भी भरा था। कदाचित यह उनका पहला रिकार्ड था। कलकत्ते की एक महफिल में मुश्तरी के बाद अन्त में आफ़ताबे मौसीकी फैयाज खाँ का गायन था। पर उस महफिल में मुश्तरी के सुरों का जादू कुछ ऐसा चढ़ा कि उसके बाद फैयाज खाँ ने यह कहते हुए गाने से इन्कार कर दिया कि अब इसके आगे गाना-बजाना नहीं हो सकता। गज़ब की ये उस्तानियाँ थी कि अपने नायाब फन से संगीत के जाने-माने दिग्गजों तक के छक्के छुड़ा देती थीं।

आगरे की ही वहीदनबाई ने भी तहलका मचा रखा था। वह फिल्मों में भी पार्श्व गायन करती थी। उसके सधे स्वर और कोमल मींडों ने सबके दिल मोह लिए थे। 'सखी री पिया बिन' और 'झूला किन ने डालो,' जिन्होंने इनकी ये ठुमरियाँ सुनी है कलेजा थामकर रह गये। फिल्म अभिनेत्री निम्मी इन्हीं की लाड़ली है।

वयोवृद्ध ध्रुपदगायक दरभंगा के पंडित रामचतुर मल्लिक की जुबानी सुनी कि जद्दनबाई आगरे से गया की तरफ आई थी। कई बरसों तक दरभंगा के तत्कालीन महाराज की चहेती रही। बाद में इलाहाबाद चली गयी। ये कलकत्ता भी रही और फिर बम्बई रहने लगी जहाँ फिल्मों में अभिनय तथा संगीत-निर्देशन दोनों ही किया करती थी। प्रसिद्ध सिनेतारिका नर्गिस इन्हीं की सुपुत्री थी। सुप्रसिद्ध फिल्म संगीत-निर्देशक एस० एन० त्रिपाठी ने जद्दनबाई को भैयासाहब गणपतरावजी की शिष्या बतलाया है जिनसे इन्होंने हारमोनियम और ठुमरी की तालीम ली। जो कुछ भी हो जद्दनबाई ठुमरी-दादरा गाने में अपनी मिसाल छोड़ गयी। 'फुलगेंदवा न मारो लागत करेजवा में चोट' भैरवी की इस ठुमरी को इन्होंने विशुद्ध शास्त्रीय तथा पारम्परिक ढंग से गाया है। इसी ठुमरी को रसूलन ने भी स्वर दिया। रसूलन के प्रस्तुतीकरण में लोकशैली का असर है। पर दोनों ही गायिकाओं के अन्दाज और ढंग निराले हैं। 'तोड़ लाई जमुनिया की डार' इस दादरे को जिस नज़ाकत और नफ़ासत से जद्दन पेश कर गयी वह मलाहत वर्तमान गायिकाओं में कम ही दिखती है। जद्दनबाई को शेर-ओ-शायरी का बड़ा शौक था और अक्सर उनके दीवानखाने में जोश मलीहाबादी जिगर मुरादाबादी, सागर निजामी सरीखे धुरन्धर शायरों की जमघट लगती थी। जद्दनबाई के रिकार्ड 1933 ई० में बने।

गौहरजान भी कई हो गयी। पर जयपुरवाली गौहर और कलकत्ता की गौहरजान संगीतकला की दो बेशकीमती जवाहरात थीं। जयपुरवाली गौहरजान पक्के गाने में माहिर थी। राग अड़ाना की उनकी गायी बंदिश 'गगरी मोरी भरन नहीं देत' आज भी कद्रदांओं में चर्चित है। पर कलकत्तावाली गौहर अपने जमाने में धन और यश के जिस शिखर पर पहुँची वह 'पहुँच' अन्य गायिकाओं के लिए ख़्वाब थी। आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व ठुमरी और टप्पा की नवीन शैली ने अपना अभूतपूर्व प्रभाव जमाया था। संगीत की दुनिया में वह ठुमरी का ज़माना था जिसकी प्रवर्तिका आजमगढ़ निवासिनी मलकाजान थीं। उनकी शैली के ठुमरी-गान ने बड़े उस्तादों तक का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। यद्यपि मलका ने इसे प्रारम्भ किया, पर इसे पूर्ण विकास पर उनकी सुपुत्री गौहरजान ने पहुँचाया। गौहरजान एंग्लो-आर्मिनियन माता विक्टोरिया और मुसलमान पिता की संतान थी। विक्टोरिया इस्लाम स्वीकार कर मलका बन गयी। सुमधुर स्वर, आकर्षक रूप-छवि, चातुर्य, शील, शिष्टाचार और वफा की जीती-जागती तस्वीर थी गौहरजान। गौहरजान एक नृत्य गान पटीयसी बाई जी ही नहीं थी—एक सुरूचिसम्पन्न बहुमुखी प्रतिभाशालिनी महिला भी थी।

गौहरजान का जन्म 1870 ई० में बनारस में हुआ। माता से संगीत तो विरासत में मिला, पर विधिवत् प्रशिक्षण कई गुरूओं के चरणों में रहकर हुआ। प्रथम गुरु थे कबीरचौरा, बनारस के बेचू मिश्र। भैया गणपतरावजी से भी मार्ग-दर्शन मिला। पक्के रागों की तालीम पटियाला घराना के उस्ताद काले खाँ से प्राप्त हुई। उनदिनों गौहर कलकत्ता आ गयी थी। कलकत्ते के संगीतप्रेमी अभिजात समाज में इनकी बड़ी कद्र थी। एक अरसा तक काले खाँ से वह तालीम लेती रही। गौहरजान के अंतिम उस्ताद हुए मौला बक्श। कहते हैं गौहरजान सात भाषाओं में गान करने की

पटुता रखती थी। रवीन्द्रसंगीत भी बखूबी गाती थी। इनके गाने के कोई 600 डिस्क बने। सबसे पहला रिकार्ड 1906 ई० में बना। अपने टप्पा-ख्याल के रिकार्ड के अन्त में अपने नाम के साथ बंदिशकार का नाम सेठ दुल्गीचंद बताना नहीं भूलती थीं। पण्डित भातखंडे ने हिन्दुस्तान भर की गानेवालियों में ख़याल और ठुमरी की सबसे श्रेष्ठ कलाकार के रूप में गौहरजान का उल्लेख किया है। गौहरजान का राग देस का दादरा, 'श्याम मोरी बहियाँ गहो ना.....' बड़ा लोकप्रिय हुआ।

अनेकों ऐसे किस्से हैं जिससे गौहर की भव्य गानकला और राजसी ठाठबाट के उदाहरण मिलते हैं। इन सबों में सबसे दिलचस्प कथा है दतियानरेश भवानी सिंह के कलकत्ता प्रवास काल में उनके अनुरोधपर गौहर का मुजरा करने से इन्कार करना और बाद में 1902 ई० में युवराज के विवाहोत्सव पर आमंत्रित किये जाने पर अंग्रेज कमिश्नर के दबाव के कारण दतिया का आमंत्रण स्वीकार करना। रिसायत की ओर से कलकत्ता से दतिया तक स्पेशल ट्रेन का प्रबन्ध किया गया। गौहरजान अपने 111 आदमियों के दल सहित 10 धोबी, 4 नाई, 20 खिदमतगार, 5 महिलायें, 5 घोड़े, 5 सईस, हकीम और गायक-वादक, इन सबों के साथ दतिया आयीं। साथ में दुअन्नी और चवन्नीजान नामक दो शिष्यायें भी थी जिन्हें गाते समय वह अपने अगल-बगल बिठाती थी। पूरे अमले की खातिरतवाजो महाराज की ओर से होने लगी। गौहरजान को नित्य नयी पोशाकें और दो हजार रुपये बतौर तोहफा दिये जाने लगे। लेकिन युवराज की शादी के एक सप्ताह बाद भी उसे गायन के लिए दरबार में नहीं बुलाया गया। बड़े अनुनय-विनय के पश्चात महाराज इस शर्त पर गौहर का गाना सुनने के लिए राजी हुए कि छः माह तक उसे यहाँ रहकर गाना सुनाना पड़ेगा। आप सोच सकते हैं कि किस दर्जे की वह गायिका थी और कैसे थे वह कलाप्रेमी नरेश।

जानकीबाई ख़याल, ठुमरी, दादरा, गज़ल सबकुछ गाने में पारंगत थी किन्तु पूर्वी, चैती, होरी आदि गाने में विशष महारत रखती थी। बड़ा ही सुरीला गला पाया था इन्होंने अपने जमाने में इनका गाया गौड़-मल्हार का रिकार्ड—'रुम-झूम बदरवा बरसे....।' बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। पर इनके राग दरबारी के रिकार्ड को कुछेक शास्त्र-सम्मत नहीं मानते। दरे असल ये ख्यालिया तो थी नहीं। पर मैंने इनके जितने भी रिकार्ड सुने हैं उनमें यमन-कल्याण में गायी सोज़ख्वानी का रिकार्ड अपूर्व है। जानकीबाई की गायी—'हथवा लगत कुम्हिलाई हो रामा, जूही की कलियाँ' सुनकर लोग होश गंवा बैठते थे। गले में गजब का सोज और साज थे। आवाज ऐसी पाटदार कि जब वह रात की महफिल में गाती तो मीलों सूनाई पड़ती थी।

कुछ लोगों (जिसमें प्रसिद्ध संगीतमर्मज्ञ श्री राजेश्वरी प्रसाद नारायण सिंह भी हैं) के अनुसार वह इलाहाबाद या उसके निकटवर्ती किसी गाँव की रहनेवाली थी। ब्राह्मण की संतान थी।

जानकीबाई के लिए 'इलाहाबाद' तथा छप्पनछूरी' के नाम से विख्यात होने की जो कथा कुछ लोगों ने प्रस्तुत की है, वह अधिक प्रामाणिक लगती है।

जानकीबाई असाधारण कोटि की गानेवाली तवायफ़ थी जो अपने व्यक्तित्व की पहचान बड़ी जहमत उठाकर बनाने में कामयाब हुई।

पंचम जार्ज के राज्याभिषेक (सन् 1911–12) के समय दिल्ली दरबार में वह गौहरजान के साथ आमंत्रित की गयी थी। ताजपोशी के उस जलसे में दोनों ने मिलकर गाया था—'यह जलसा ताजपोशी का मुबारक हो, मुबारक हो।' सम्राट ने खुश होकर दोनों को सौ-सौ गिन्नियाँ भट दिये। वैसे तो अपने जमाने में लोकप्रियता की दृष्टि से इन दोनों गायिकाओं का समान स्थान था। लेकिन जिन लोगों ने इन्हें रूबरू सुना उनकी धारणा थी कि गानकला में गौहर के मुकाबिले जानकीबाई बीस ही पड़ती थी।

कहते हैं, रूपजीवा जानकीबाई बदसूरत थी। लेकिन कंठ में ऐसा जादू था कि सुननेवालों को पागल कर देता था। अपने गानकौशल के कारण जानकीबाई राजघरानों में ही गाने जाती थी। मशहूर है कि एकबार रीवां रियासत में वह गाने गयी थी। जानकीबाई को लड़कीवालों की तरफ से अनुबंधित किया गया था। जिस समय जानकीबाई पेशवाज पहन रही थी, राजपरिवार के किसी सदस्य ने उसे देख लिया। जानकीबाई का रंग-रूप देखते ही वह आपे से

बाहर हो गये। जिस दीवान ने जानकीबाई की तारीफ की थी और सट्टा किया था उन्हें बुलाया गया। उन्हें दूसरी तवायफ लाने का हुक्म हुआ। लेकिन जानकीबाई कोई ऐसी-वैसी तवायफ तो थी नहीं। गजब का आत्मविश्वास था उसमें। उसने दीवान को एक उपाय सुझाया। दीवान को तसल्ली हुई और उसने महाराज से आकर निवेदन किया कि 'हुजूर एक दूसरी मशहूर तवायफ को लाया गया है, लेकिन उसकी शर्त है कि वह पर्द में गाएगी।' महाराज ने शर्त कुबूल कर ली। जब परदे से जानकीबाई ने गाना शुरू किया तो बाहर बैठी महफिल झूमने लगी। महाराज ने एक हजार एक अशर्फियों और मोतियों की माला से जानकीबाई को नवाजा। महफिल खत्म होने के बाद महाराज ने परदे-वाली तवायफ से मिलने की इच्छा जाहिर की। जानकी-बाई तुरंत हाथ जोड़कर महाराज के सामने खड़ी हो गयी। महाराजा बहादुर तो देखते ही पानी-पानी हो गये। उन्होंने जानकीबाई से शर्मिन्दगी जाहिर की।

उस जमाने में संगीत की दुनिया में सर्वाधिक लोक-प्रियता के कारण एच० एम० व्ही० कंपनी ने सबसे पहला गाने का रिकार्ड जानकीबाई का ही बनाया।

जानकीबाई न केवल उच्चकोटि की गायिका थी बल्कि शायरी भी अच्छी कर लेती थी। शेरो-शायरी में माकूल सलाह के लिए वह अक्सर उर्दू के मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी के यहाँ जाती रहती थी। 'दीवाने जानकी' नाम से उनकी शायरी की किताब इसरारे करीमी प्रेस, जान्सनगंज, इलाहाबाद से छपी थी। लेकिन इसकी एक भी प्रति आज उपलब्ध नहीं है।

इन गायिकाओं द्वारा गाये गये दादरा तथा ठुमरी के बोल 'मजा लै लै रसिया नई झुलनी का', 'कासे लागी नजरिया', 'रस के भरे तोरे नैन', 'तोहे लेके सँवरिया निकस जैबे' आदि को सुनकर शालीनता की दृष्टि से हम इन बंदिशों की आलोचना कर सकते हैं। पर इन प्रस्तुतियों में जो इक तरावट और मिठास बसी है वह श्लील-अश्लील के भेद को मिटा देती है। प्रस्तुतिकरण की तकनीक तथा भाव-सृष्टि की दृष्टि से छोटी से छोटी चीजों की ये बानगी अतुलनीय है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। खुजराहो के मन्दिरों में उत्कीर्ण कामुक शिल्प के नमूने हमारे अन्दर काम-वासना नहीं जगाते। उनके अवलोकन से हमें सौंदर्या-नुभूति ही नहीं होती अपितु लोक-परलोक की वास्तविकता का भान होता है।

तवायफों की समृद्ध परम्परा की अंतिम कीर्तिस्तंभ थी, रसूलन, सिद्धेश्वरी और अख़्तरी। इनके जीवन पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। हम उसकी पुनरावृत्ति नहीं करना चाहते। लेकिन इतना अवश्य कहना चाहेंगे कि ठुमरी एवं उप शास्त्रीय गान-विधाओं की इस त्रिवेणी के बाद हिन्दु-स्तानी संगीत के उस जानदार और रंगीन अध्याय की समाप्ति हो गयी जिसके मायाजाल में कई दशकों तक संगीत के दीवाने बिंधे रहे। रसूलन और सिद्धेश्वरी यदि पुरविया ठुमरी की आख़री यादगार थी तो अख़्तरी पूरब और पंजाबी अंग की मिलीजुली बानगी की अंतिम सशक्त व्याख्याता। इन तीनों के अवसान से महफिल की दुनिया उजड़ गयी। खुशगवार हूँ कि इन्हें रूबरू सुनने के अनगिनत सुयोग मुझे प्राप्त हुए। जितनी बार इनको सुना हर बार इनका संगीत एक नयी ताजगी दे गया। इनकी टक्कर की गायिकायें तो अब शायद ही पैदा हो सकेंगी। ठुमरी-दादरा जैसी ओछी समझी जानेवाली गान शैलियों को इन गायिकाओं ने जिस ऊँचे मुकाम पर पहुँचाया वह साधनाकौशल इनकी अटूट रियाज, समर्पणभाव और पोख्ता तालीम की निशानी पेश करती है। पेशेवर होते हुए भी व्यावसायजनित ओछेपन और दुर्भावनाओं से ये परे रहीं और यही है कला में इनकी उत्कृष्टता और गहरी पैठ का राज। ठुमरी गाने में नियम-बद्धता और शास्त्रीय आचार-विचार का जैसा निर्वाह ये करती, उसे देख-सुनकर दंग रह जाना पड़ता था। मुझे याद है सुबह के एक जलसे में रसूलन शिरकत कर रही थीं। किसी ने पीलू की ठुमरी 'आंगन में मत सो' सुनाने की फरमाइश की। पर बड़े शिष्टभाव से उन्होंने शाम के राग में बँधी उक्त ठुमरी को भोर की बेला में गाने से इन्कार कर दिया। काश, आज की संगीत की बुलंद हस्तियाँ (विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त वादकगण) भी इन शिष्टाचार का पालन करती। अपने एक गाने से ही यदि कोई कलाकार महानता के क्षितिज पर पहुँच गया तो 'रस के भरे तोरे नैन' गाकर सिद्धेश्वरी, 'फुलगेंदवा न मारो

मैका लगत करेजवा में चोट' गाकर रसूलन और 'कोयलिया मत कर पुकार' गाकर अख़्तरी ने उसे संभव कर दिखाया। इनकी ये प्रस्तुतियाँ हमेशा-हमेशा के लिए इन्हें जिन्दा रख गयीं।

'छोटी चीजों' की फनकारा यों तो और भी हो गयीं, आगरा और चिलबिले की मलका, बनारस की शिवकुंअरी, कमलेश्वरी, तारा तथा वजीरजान, मुजफ्फरपुर की पन्नाबाई, अनवरी, मलिका व पुखराज, मेरठ की कालीजान, दिल्ली की नजीरबाई, पानीपत की अमीरजान, लाहौर की मुख्तार बेगम व कज्जन, लखनऊ की दुलारी, गया की ढेलाबाई, अंगूरबाला, इन्दूबाला आदि। स्थानाभाव से इनके विस्तार में जाना मुमकिन नहीं। पर ग़ज़ल गायकी जिन गिनी चुनी गायिकाओं द्वारा रौशन हुई उनमें कमला झरिया को भुलाना मुश्किल होगा। लगभग चालीस-पचास वर्ष पूर्व गजल गायकी कोठे व तवायफ़ों के साथ जुड़ी थी। कोठों से बाहर इसे लोकप्रिय बनाने में कमला झरिया का बड़ा हाथ रहा। कमला का जन्म एक साधारण कामकाजी गृहस्थ परिवार में झरिया (बिहार) में हुआ था। काजी नजरूल और जमीरुद्दीन खाँ की देखरेख में उसने संगीत में कुशलता प्राप्त की। ग़ज़ल को उसके सम्पूर्ण भाव, उसके क्षोभ, करुणा, आवेग, अर्थ व संकेत सहित वह बड़े सुन्दर ढंग से अदा करती थी। उनकी आवाज में इक रूमानियत थी, जिसमें कह सकते हैं बिहारी पुट था। सरल, सहज और आडम्बर रहित प्रस्तुतीकरण के लिए उन्हें हमेशा याद किया जाता रहेगा। बिहार में गया और मुजफ्फरपुर की ढेला और पन्नाबाई दादरा गाने में अद्वितीय थीं। बिहार की रत्नगर्भा धरती न केवल धर्म, दर्शन, राजनीति, ज्योतिष, साहित्य आदि के क्षेत्र में अनमोल नगीने उगलती रही बल्कि संगीत की भी नायाब हस्तियाँ दे गयीं। अफसोस है कि वर्तमान बिहार को अपने इन बेशकीमती जवाहरातों की पहचान भी नहीं रह गयी है। अतीत के महत्व को भुला कर जब वर्तमान से भूत को विलग करने का उपक्रम किया जाता है तो वर्तमान और भविष्य दोनों ही स्थितियाँ ख़तरनाक हो सकती हैं। बिहार की धरती वर्तमान में इसी ख़तरनाक स्थिति से गुजर रही है जहाँ संगीत की शालीन परम्परायें लगभग ख़त्म हो चुकी है और विनष्ट परम्पराओं के मलवे के रूप में सिर्फ हुज्जत और हिजा बच गयी है।

कमाल की जिन्दादिल हुआ करती थीं ये गानेवालियाँ—मनहूसियत से कोसों दूर। इनकी हर अदायें रंगीन और तबीयतदारी में डुबोयी होतीं। यही कारण है कि इनके संगीत में जान हुआ करती थी। प्रख्यात गायक मल्लिकार्जुन मंसूर से किसी ने पूछा कि संगीत-साधना में बड़े कष्ट उठाने पड़ते होंगे, तो मंसूर साहब ने उसे खामोश करते हुए कहा, 'कष्ट काहे का। संगीत में तो आनन्द ही आनन्द है। सुर-लोक वास्तव में आनन्दलोक है।' वस्तुतः संगीत के इस आनन्दलोक को इन गान-रुपजीवाओं ने भरपूर जिया।

महफिल के चिराग गुल हो चुके हैं। सामन्तवाद के ख़ात्मा के साथ ही संगीत की एक हसीन सदाबहार दुनिया मिट गयी। और इसके साथ ही ठुमरी-दादरा जैसी मिज़ाज-दारी की भावप्रवण गयकी भी मिटने-मिटने पर है। उन गानेवालियों के कंठ-स्वर में दिल बोला करता था, जब वो ठुमरी के बोल भरती तो लगता कलेजे पर सुरों के नश्तर चल गये हों। बोलों की नफ़ासत, कमनीयता और अदाकारी, बंदिश की खूबसूरती, पेंचीदगी और लयात्मकता, स्वरों की कशीदाकारी—सभी कुछ लासानी, दिल की गहराइयों में समा जानेवाली इनकी कला-चातुरी का हुस्न और नायाब ज़िन्दगानी; और अब तो बस उनकी ये स्मृतियाँ ही शेष रह गयी हैं।

"सब ज़िन्दगी का हुस्न चुरा ले गया कोई,
यादों की क़ायनात मेरे पास रह गयी।"

संगीतशास्त्र में विज्ञान

—प्रेमलता शर्मा

'विज्ञान' यद्यपि उपनिषद् में भी बहुत रूप से प्रयुक्त है, तथापि आज इसे अंग्रेजी शब्द science का पर्याय माना जाता है। इसी अर्थ में हम इस शब्द को यहाँ ले रहे हैं।

'विज्ञान' की पहली शर्त यह है कि उसमें जिस ज्ञान की स्थापना हो, उसका परीक्षण (verification) सम्भव होना चाहिए। परीक्षण का करण या साधन है इन्द्रिय और उसके सहायक यन्त्र।

भारतीय संगीतशास्त्र में विज्ञान का स्थान है या नहीं, यह जिज्ञासा किस प्रसंग में उठती है, इसकी चिन्ता छोड़ कर हम यहाँ विचार कर रहे हैं। सबसे पहले यह समझ लेना ज़रूरी है कि भारतीय शास्त्रों में परीक्षण की प्रयोग-शाला मनुष्य के भीतर यानी उसके शरीर, मन, प्राण में है, जिसे अध्यात्म संज्ञा दी गई है। इस प्रयोगशाला के कुछ उदाहरण नमूने के तौर पर यहाँ प्रस्तुत हैं।

(1) शारीरी वीणा और दारवी वीणा अथवा, दैवी वीणा और मानुषी वीणा, इन जोड़ियों में मानव-शरीर के उच्चारण-यन्त्र को प्रथम स्थान दिया गया है। दारवी वीणा को शारीरी का प्रतिबिम्ब माना गया है।

(2) ध्वनि के नीच, मध्य और उच्च रूपों को 'स्थान' कहा गया है और 'स्थान' को हृदय, कण्ठ और तालु (मूर्धा) में रखा गया है। मन्द्र का दुगुना मध्य और मध्य का दुगुना तार, यह तथ्य सीधे-सीधे बहुत बाद में (तेरहवीं शती ई० में) संगीत रत्नाकर (1. 3. 7) में कहा गया है। नाट्यशास्त्र में केवल तीन 'स्थानों' के रूप में मन्द्र, मध्य, तार का उल्लेख है। अनुरणन युक्त तार की लम्बाई जितनी अधिक होगी, स्वर उतना नीचा होगा और तार की लम्बाई जितनी कम होगी, स्वर उतना ऊँचा होगा। इस वैज्ञानिक तथ्य को 'संगीत पारिजात' के प्रणेता पं० अहोबल ने तो 17 वीं शताब्दी में स्पष्ट किया, किन्तु हृदय और कण्ठ तथा कण्ठ और मूर्धा, इन स्थानों के बीच का अवकाश क्रमशः एक और आधा है। इस प्रकार वैज्ञानिक तथ्य का दर्शन और परीक्षण सर्वप्रथम शरीर के भीतर ही किया गया है।

(3) वाद्य-निर्माण की आदिम प्रक्रिया में मनुष्य की ग्रहण-शक्ति, धारण-शक्ति और धारणा के आधार पर निर्माण शक्ति का वर्णन नाट्यशास्त्र के 34 वें अध्याय के 4-9 श्लोकों में है, जिनमें निम्नलिखित लघु आख्यान निबद्ध है।

एक बार अनध्याय के दिन स्वाति (शिव के गण) वर्षा के समय जल लाने के लिए जलाशय पर गए। वर्षा की धाराएँ कमलों के छोटे, बड़े और मध्यम आकार के पत्तों पर पड़ रही थीं और क्रमशः गम्भीर, मधुर, मनोरम 'स्वन' या ध्वनि उत्पन्न कर रही थीं। स्वाति ने उस 'स्वन' को चित्त में धारण किया और आश्रम में लौट आए। उसी का ध्यान कर के उन्होंने, विश्वकर्मा की सहायता से अवनद्ध (चमड़े से मढ़े) वाद्यों का निर्माण किया। कहना न होगा कि जिस ध्वनि का धारण किया गया था, उसके सदृश ध्वनि उत्पन्न करने वाले वाद्यों के निर्माण में 'ध्यान' की बड़ी भूमिका है। इस आख्यान में विज्ञान की बात यह है कि अनुरणन का आश्रय जितना बड़ा होगा, ध्वनि उतनी मन्द्र या नीची होगी; आश्रय जितना छोटा होगा, ध्वनि उतनी ऊँची होगी।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतीय संगीतशास्त्र में जो भी 'विज्ञान' है, वह 'अध्यात्म' की प्रयोगशाला से ही निकला है। अधिभूत और अधिदेव यानी physical और divine से उसका कोई विरोध नहीं है, अपितु उन दोनों के साथ उसका पूरा समन्वय है। कहना न होगा कि यह विज्ञान science तो है। किन्तु उसका अधिष्ठान आज के विज्ञान से भिन्न है।

□

रंगों की पृष्ठभूमि तथा सांगितिक सात स्वरों के रंग

—आदिनाथ उपाध्याय

विचारों से दार्शनिक तथा बुद्धि से विज्ञान-भिक्षु प्रो० ललित किशोर सिंह ने संगीत के लक्ष्य-लक्षण मूलक अध्ययन के सम्बन्ध में एक बड़ी सारगर्भित एवं अनुकरणीय बात कही है—'किसी भी संगीत-प्रणाली का मूल्य उसकी पद्धति के अध्ययन, उसकी परम्परा पर विचार और परिपाटी में क्रियात्मक रूचि के द्वारा ही समझा जा सकता है। प्रत्येक संगीत-पद्धति का भूत, वर्तमान और भविष्य होता है। इस लिए उसके इतिहास, उसके व्यवहार और उसकी संभावनाओं पर सहानुभूति के साथ विचार करके ही उसके महत्व को समझा जा सकता है।' (ध्वनि और संगीत, पृ. 149) प्रस्तुत विश्लेषण इसी दिशा में, 'संगीत के षड्ज आदि सातों स्वरों के रंग' के परिप्रेक्ष्य में किये गये चिन्तन-मन्थन का एक लघु परिणाम है।

भारतीय चिन्तन की परम्परा एक अखण्ड एवं सम्पूर्ण की चिन्तन-परम्परा है। हम यह मानकर चलते है कि समस्त विद्या-कलाओं में यहाँ तक कि व्यवहारगत-कलापों में भी परिप्रेक्ष्यतः एक अन्तःसम्बन्ध है। इस अन्तःसूत्रता का ध्यान रखते हुए सांगीतिक स्वरों के रंग के केन्द्रीभूत इस विवेचन में भी रंगों के सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य पर दृष्टिपात करना आवश्यक ही नहीं किन्तु अनिवार्य भी होगा।

जैसा कि शीर्षक से ही सुस्पष्ट है यह लेख दो भागों में प्रस्तुत है। 'रंगों की पुष्ठभूमि' जो एक प्रकार से मुख्य प्रस्तुति का पूर्वपक्ष है, के अन्तर्गत 'रंग' शब्द की व्युत्पत्ति, रंगों की व्यापकता तथा रंगों के प्रत्यक्षीकरण (Perception) से जुड़े कुछ रोचक एवं महत्वपूर्ण तथ्य आदि बिन्दुओं पर विचार किया गया है। 'सांगीतिक सात स्वरों के रंग' के अन्तर्गत संगीत के सात स्वर, मतंग आदि ऋषियों का स्वर-वर्ण विवेचन, स्वर के रंगों के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ एवं उनका स्पष्टीकरण, स्वरों के रंग विषयक विवेचन की प्रासंगिकता तथा आज के परिप्रेक्ष्य में स्वरों के रंग के प्रत्यक्ष अवबोधन (Perception) की संभाव्यता आदि बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

रंगों की पृष्ठभूमि

रंग शब्द की व्युत्पत्ति 'रञ्ज्' धातु से हुई है और शब्दकोश में जिसके अर्थ हैं—रँगना, हलका रँगना, चमकना, रंगीन बनाना; अनुरक्त होना, प्रसन्न होना, सन्तुष्ट होना आदि। 'रञ्ज्' में घञ् प्रत्यय के योग से 'रंग' बनता है। रंग शब्द का प्रयोग रंग-मंच, रंगकर्म आदि के लिए भी किया जाता है। इसीलिए, इस अर्थ-विस्तार के कारण रंग अपने सामान्य अर्थ (रक्त-पीत आदि वर्ण) के अतिरिक्त उक्त अनेक अर्थों एवं अनेक प्रसंगों में प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त रंग शब्द कभी-कभी किसी अन्य शब्द अथवा शब्द-समूह के संयोग से मूल भाव को उत्कट करने में भी प्रबल भूमिका निभाता है। हमारे दैनिक-प्रयोग में इसके अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं। जैसे, हम बोलते हैं—पं० रविशंकर के सितार-वादन में तन्त्र तकनीक के अगणित रंग एक साथ दृष्टिगोचर होते हैं अथवा डॉ० एन० राजम की वायलिन में 'गायकी और गत' के 'विविध रंगों' का सामंजस्य देखते ही बनता है अथवा उस्ताद जाकिर हुसैन के के तबले में तबलाबाज के 'अनेक रंग' एक साथ दिखायी देते हैं। इसी प्रकार दृष्टान्त की प्रभावोत्पादकता के लिए 'मन न रँगाये-रँगाये जोगी कपड़ा' तथा 'रंग-विरंगी दुनिया' जैसे रंगगत-रंगमय प्रयोग तो हम बराबर ही करते हैं।

रंग के परिचय-क्रम में यह उल्लेख्य होगा कि रंग के पर्यायवाची रूप में वर्ण शब्द का प्रयोग होता हैं और वहाँ इसका मुख्यार्थ रक्त-पीत वर्ण, गौर-श्याम वर्ण; से जुड़ा है। रंग और वर्ण का यह अर्थ-साम्य कुछ एक महत्वपूर्णप्रसंगों में भी देखा जा सकता है। जैसे मुख की आभा में परिवर्तन के लिए 'चेहरे का रंग उतर जाना' इसे 'वैवर्ण्य' से इंगित करते हैं।

यह तो हुआ रंग के व्यापक अर्थों का परिप्रेक्ष्य। 'रंग' का मुख्यार्थक परिप्रेक्ष्य भी अपने आप में बहुत विस्तृत है तथा 'स्वरों के रंग' के प्रसंग में प्रस्तुत चर्चा का केन्द्र बिन्दु भी वही है।

1. रंगों की व्यापकता :

वर्णसंयुत सूर्य की रक्त-पीतादि सप्तरंगी रश्मियाँ जो सम्पूर्ण सौरमण्डल में व्याप्त हैं ऊनसे तो हम भली भाँति परिचित हैं ही; महाचेतन से उद्भूत त्रिगुणात्मक विवर्तन के श्वेत श्याम आदि वर्ण भी[1] सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड में रंगों की व्याप्ति के ही सूचक हैं। यूँ तो इन्द्रियगोचर रंगों के अनेक वर्गीकरण, कोटियाँ–उपकोटियाँ तथा भेद-उपभेद बनाये जा सकते हैं, एक-एक रंग के भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनेकों आभा-भेद (Shades) संभाव्य हैं। उदाहरण के लिए मात्र हरे रंग के ही एक सौ एक (101) प्रकार बूँदी के भितिचित्रों पर आज भी देखे जा सकते हैं।[2] रंगों के इस रंग-विरंगे मनभावन संसार का पावस की हरित एवं वसन्त की पीतो-वासन्ती छटा में; अरूण-स्वर्णिम-हरित कोमल कोपलों से कसी एवं मौसम के अनुरूप पुष्पों के संभार से झुकी तरु की शाखाओं में; दूसरी ओर पृथ्वी के तीन चौथाई भाग सागर की नील-हरित जल-राशि में और यहाँ तक कि रिक्त और शून्य से प्रतीत होने वाले किन्तु रंगों के नवनवोन्मेष से संपूरित अन्तरिक्ष में भी; यत्र-तत्र सर्वत्र अवलोकन किया जा सकता है।

एक ओर जहाँ रंगों का यह दृश्य-रूपात्मक संसार इतना व्यापक है वहीं दूसरी ओर अन्याय सन्दर्भों से जुड़ा उसका दैनन्दिन उपयोगी पक्ष भी रोचक व अतीव महत्त्व का है। चित्र-मूर्ति के प्रसंग में तो रंगों की भूमिका सर्वोच्च है ही नाट्य आदि के आहार्यगत प्रसंगों में, रंगमंचीय सज्जा आदि में तथा श्रृंगारादिक रसों के पृथक-दृथक रंगों के अस्तित्वबोध एवं दृश्यात्मक काव्य-चित्रण में रूप के साथ रंग की सहज अन्विति के फलस्वरूप अन्यान्य श्रव्य कलाओं के प्रसंग में भी, रंगों की भूमिका को अस्वीकारा नहीं जा सकता। रूप-दृश्यगत किसी भी अभिव्यक्ति को उत्कट बनाने अथवा उत्कट को उत्कटतर बनाने में रंगों की भूमिका निर्विवाद है।

रंगों के विकिरण के द्वारा अनेक बीमारियों का इलाज होता है। जैसे—नीलम रत्न से नीले रंग की रश्मि का विकिरण होता है और वह पेट तथा नेत्र रोगों के लिए आरोग्यदायी होता है। इसी प्रकार अन्यान्य रंग अन्यान्य रोगों के लिए हितकारी बताये गये हैं। रंगों का हमारे ऊपर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ता है और इस परिप्रेक्ष्य में आज भी अनेक प्रयोग चल रहे हैं।

दैनिक जीवन के अनेक क्रियाकलापों में भी रंगों की भूमिका को देखा जा सकता है। पूजा-पाठ तथा विवाह आदि के मंगल अवसरों पर लाल एवं पीले वस्त्रों का प्रयोग आनन्द-बधाई के अवसरों पर रंग-विरंगे गाढ़े वस्त्रों का प्रयोग, शोकादिक प्रसंगों एवं वैधव्य जीवन के लिए परम्परया श्वेत वस्त्र का प्रयोग विहित है। यातायात विभाग में लाल रंग खतरे अथवा ठहराव का संकेतक और हरा रंग निर्बाधता का; इसी प्रकार विद्युत-प्रणाली में लाल, हरे तथा पीले रंग के तार क्रमशः गर्म, ठंडे तथा तटस्थ होने के सूचक हैं।

योग-साधना, नाद एवं प्रकाश-संभूत 'दिव्य' की साधना गायत्री महामन्त्र की साधना आदि सभी साधना-सिद्धियों में रंगों की प्रबल पृष्ठभूमि देदीप्यमान है। क्योंकि आज्ञा से सहस्रार तक के सभी चक्रों के पृथक्-पृथक् हरित आदि वर्ण होते हैं, इडा-पिंगला-सुषुम्ना नाडियों (तथा आज्ञा आदि चक्रों से जगुरने वाले) उनके संयोग-स्थलों के भी रंग होते हैं। पूरक, कुम्भक तथा रेचक प्राणायामों के साथ नाभि, हृदय तथा ललाट में क्रमशः नील वर्ण (विष्णु), रक्त वर्ण (ब्रह्मा) एवं उज्ज्वल वर्ण (शिव) का संयोग है तथा गायत्री के चौबीसों अक्षरों और सूर्यादि नव ग्रहों के भी पृथक-पृथक रंग कहे हैं। भिन्न-भिन्न साधना विधियों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न स्थलों पर अवस्थित-उद्भासित ये सभी रंग एक ओर जहाँ तत्तत् स्थलों के स्वरूपगत संपूर्ण परिप्रेक्ष्य के परिचायक होते हैं वहीं ध्यान-धारणा में भी ये सशक्त भूमिका निभाते हैं।

पूर्वोक्त, रंगों के स्वरूपगत वैभव एवं इनकी भूमिका के अवलोकन के पश्चात् यदि इन्हें व्यापक के स्थान पर सर्वव्यापक कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। शायद

इसीलिए कहा गया है कि हमारे चारों ओर का विश्व-ब्रह्माण्ड रंगों की ईश्वरीय भाषा में हमसे वार्तालाप करता है।[3] और, रंगों की भूमिका जब 'सर्वव्यापक' है तो इससे भला संगीत कैसे अछूता रहता ?

2. रंगों के प्रत्यक्षीकरण (perception) **से जुड़े कुछ रोचक एवं महत्वपूर्ण तथ्य** :

रंगों के प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया देखने में जितनी सरल और सहज प्रतीत होती है उतनी है नहीं और इस सम्बन्ध में रंगों के ग्रहण की भ्रामकता, रंगों के अवबोधन की हमारी दृष्टि-सामर्थ्य, रंगों की अनुभूति की प्रामाणिकता का व्यक्ति-निष्ठ होना, मूल स्रोत के विकिरण से चक्षुरिन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाने तक की सम्पूर्ण क्रिया-विधि का जटिल होना आदि तथ्य विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं।

(क) हमारे चक्षुओं द्वारा रंगों का अवबोधन भ्रामक—जब हम यह सकते हैं कि अमुक पदार्थ का रंग अमुक है, नीला-पीला आदि। तब वस्तुतः यह कथन भ्रमपूर्ण होता हैं क्योंकि यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि एलेक्ट्रो-मैग्नेटिक विकिरण (Electro magnetic radiation) तथा अन्तः मनोवैद्युतीय प्रक्रिया (Psychic electical internal phenomenon) के द्वारा पदार्थ में हमें जो रंग दिखाई देता है वह पदार्थ का अपना रंग न होकर अपितु इस तथ्य का सूचक होता है कि विकिरण-प्रक्रिया द्वारा उक्त नीला अथवा पीला रंग उस पदार्थ द्वारा अवशोषित नहीं हो सका है शेष सभी रंगों का अवशोषण हो चुका है। इसीलिए उस पदार्थ से अनवशोषित वह नीला अथवा पीला रंग परावर्तित होता है और वही उसका मूल रंग प्रतीत होता है जो सर्वथा भ्रामक है।

(ख) हमारी दृष्टि-सीमा अत्यन्त न्यून—वायुमण्डल में अगणित रंग-प्रकार विद्यमान है किन्तु हमारी दृष्टि की सामर्थ्य में कुछ ही रंग आते हैं। रंगों का वह तरंगदैर्ध्य (wavelength) जो हमारी दृष्टि-सीमा में आता है 4000 से 7800 ऐंगस्ट्रॉम[4] (Angstrom) के बीच का है जहाँ न्यूनतम रंग-सीमा लाल से आरंभ होकर उच्चतम सीमा बैंगनी तक पहुँचती है। इसी प्रकार दो ऐसे समीपस्थ रंग जिनका अन्तर 20 ऐंगस्ट्रॉम से कम होता है उस अन्तर (distinction) की पकड़ हमारे चक्षु नहीं कर पाते और वे रंग एक जैसे दिखायी देते हैं अथवा उनका ग्रहण वास्तविकता से भिन्न होता है अथवा दृष्टि-भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है। दृष्टि-सीमा का स्थूल अनुभव इन उदाहरणों में भी देखा जा सकता है—पंक्तिबद्ध जलते-बुझते विद्युत बल्ब आगे बढ़ते हुए गतिमान प्रतीत होते हैं दूसरी ओर अति तीव्र गति से चक्रमण करता हुआ लट्टू कभी-कभी पूर्ण गतिहीन यानी स्थिर अथवा विलोम गति में चलता हुआ दिखायी देता है।

(ग) रंगों की अनुभूति वस्तुनिष्ठ न होकर व्यक्तिनिष्ठ—रंगों के ग्रहण के संबन्ध में यह एक विशेष प्रकार की समस्या है। इस बात का प्रमाण नहीं मिल पाता कि दो व्यक्तियों द्वारा एक ही समय में देखा गया—वही रंग एक जैसा दिखायी दे रहा है। क्योंकि ध्वनि के अवबोधन जैसा, रंगों के अवबोधन का विषयीकरण (Objectijication) नहीं हो पाता।

(घ) मूलस्रोत से विकिरणित (radiated) **होकर चक्षुरिन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाने तक रंगों की यात्रा अत्यन्त जटिल**—वैज्ञानिक विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि मूल स्रोत से हमारी पकड़ में आने तक प्रकाश रश्मियों के मूल रंग में अनेक परिवर्तन-विवर्तन होते हैं और परिणाम-स्वरूप रंगों की अनुभूति की अनेकों भ्रामक संभावनाएँ बनती चली जाती हैं। उदाहरण के लिए 'हरा, लाल एवं नीला' दिखने वाला त्रिगुणात्मक सत्ता अर्थात् सत्त्व, रज व तम का यह वर्ण-त्रिक मूल स्रोत में क्रमशः 'श्वेत, हरित एवं श्याम' होता है[5] इसी प्रकार सूर्य अथवा इन्द्रधनुषी सप्त रश्मियों के अवतरण-अवबोधन में भी अनेक जटिलताएँ हैं।

रंगों के प्रत्यक्षीकरण की दुरूहता से ही जुड़ा हुआ एक यह भी तथ्य है कि उच्चतारता पर ध्वनि प्रकाश (रंग) में परिवर्तित हो जाती है। वस्तुतः प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य में यह तथ्य विशेष महत्त्व का है क्योंकि वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में स्वर के रंगों के रहस्य को समझने में किसी सीमा तक यह अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा।

सांगीतिक सात स्वरों के रंग

संगीत के अन्तर्गत रंगों की चर्चा जिन प्रसंगों में हुई है, वे हैं—जाति (राग का पूर्ववर्ती), राग (जिसकी व्युत्पत्ति भी 'रञ्ज' धातु से है, रागध्यान), रागमाला-चित्र, शृङ्गार-करुण आदि रसों तथा षज्जादि स्वरों के प्रसंग। 'स्वर' के अतिरिक्त प्रायः अन्य सभी प्रसंगों में रंगों की सम्बद्धता अथवा उनकी भूमिका स्वतः ही स्पष्ट है और विशद विवेचन के लिए वह पृथक् चर्चा का विषय होगा। अस्तु, यहाँ हम अपनी बात को स्वर तक ही सीमित रखेंगे। स्वर के सन्दर्भ में रंगों की सम्बद्धता मुख्य रूप से दो रूपों में दिखायी देती है एक तो प्रत्यक्ष रूप से, जहाँ सीधे-सीधे यह कहा गया है कि अमुक स्वर का अमुक रंग है और दूसरे स्वरों के ध्यान[6] के प्रसंग में, जहाँ स्वर-विशेष के रूप, वेष-भूषा आदि के माध्यम से रंग-विशेष से उसकी सम्बद्धता का परोक्ष रूप से आभास होता है। वस्तु स्थिति यह है कि अंशत्व आदि रूपों में जाति और राग से स्वरों की सम्बद्धता तथा शृङ्गार-करुणादि रसों का सांगीतिक स्वरों के साथ तादात्म्य होने के कारण परोक्ष रूप से इनके माध्यम से भी स्वरों के रंग का अनुभव किया जा सकता है।

(क) स्वरों के रंग विषयक कथन की प्रामाणिकता—भारतीय परंपरा में स्वर को चेतन कहा गया है तथा उसी के अनुरूप हमारे शास्त्र ग्रन्थों में संगीत के सातों स्वरों–षड्ज (सा), ऋषभ (रे), गांधार (ग) मध्यम, (म), पंचम (प), धैवत (ध) तथा निषाद (नी)—के कुल, देवता, ऋषि, छन्द, रस आदि और इसी क्रम में पृथक्-पृथक् स्वरों के पृथक्-पृथक् रङ्ग भी कहे गये हैं।[7] स्वरों के रङ्गों का विवरण संगीत के अतिरिक्त कुछ-एक संगीतेतर ग्रन्थों जैसे कृष्णयजुर्वेद, नारदीय शिक्षा आदि में भी प्राप्त होता है लेकिन संगीत-ग्रन्थों में यह सर्वप्रथम मतंगकृत बृहद्देशी में प्राप्त होता है। अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि 'स्वरों के रंग' से सम्बद्ध मतंग का विवेचन ही मूल (original) है। जिसका अनुसरण भावभट्ट (प्राचीन परंपरा के प्रायः अन्तिम शास्त्रकार) पर्यन्त सभी ग्रन्थकारों ने किया है।

रंगों के अवबोधन (perception) की दुरूहता तथा उसके प्रत्यक्षीकरण से जुड़ी अन्यान्य जटिलताओं से अवगत होने के पश्चात् यह तो सहज ही समझा जा सकता है कि ध्वनि-विशेष का प्रकाश-रश्मि में रूपान्तरण तथा वहाँ रंग-विशेष का दर्शन और फिर, भिन्न-भिन्न श्रुतियों-श्रुत्यान्तरों वाले संगीत के सातों स्वरों की रंगमयी प्रकाशरश्मियों का पृथक्-पृथक् सम्यक् अवबोधन कठिन ही नहीं अपितु सामान्य दृष्टि-सीमा के सर्वथा परे भी होगा। दूसरे शब्दों में स्वर तथा उसके रंग के एकत्व का दर्शन किसी दिव्य दृष्टि सम्पन्न विभूति के लिए ही शक्य होगा। मतंग तथा उनकी बृहद्देशी के परिप्रेक्ष्य में डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार प्रभृति विद्वानों की अंतः एवं बाह्य साक्षों पर आधारित शोधपूर्ण, तथ्यपरक टिप्पणियों से अब यह पूर्णरूपेण संस्थापित हो चुका है कि मतंग मात्र संगीत मर्मज्ञ ही नहीं अपितु अपने युग के एक महान् तंत्रोपासक एवं ऋद्धि-सिद्धि के अधिष्ठाता, दिव्य-दृष्टि-सम्पन्न सत्यद्रष्टा ऋषि थे। तब-ऐसी दैवी शक्ति-सम्पन्न विभूति को यदि सांगीतिक स्वरों के रंग से साक्षात्कार हो गया हो तो इसमें आश्चर्य के लिए कथमपि अवकाश नहीं होगा और यह सर्वथा प्रामाणिक होगा।

(ख) स्वरों के रंग के विषय में मतंगोक्त कथन—मतंग मुनि-प्रणीत बृहद्देशी के 'स्वर-निर्णय' अध्याय के अन्तर्गत स्वरों का रंग विषयक विवरण मूल रूप में यहाँ उद्धृत है—

पद्मपत्रप्रभः षड्ज ऋषभः शुकवर्णकः।
कनकाभस्तु गान्धारो मध्यमः कुन्द्रसन्निभः॥
पंचमस्तु भवेत् कृष्णः पीतवर्णस्तु धैवतः।
निषादः सर्ववर्णोऽयं विज्ञेयः स्वरवर्णकः॥

(बृहद्देशी, 'स्वरनिर्णय', श्लोक सं० 77अ,78 तथा 79अ)

अर्थात् षड्ज का पद्मपत्र (कमल का पत्ता) की आभा के समान (हरित वर्ण), ऋषभ का शुकवर्ण (पीत मिश्रित हरित वर्ण), गान्धार की कनक की आभा (स्वर्णिम वर्ण), मध्यम का कुन्दसन्निभ (श्वेत वर्ण), पंचम का कृष्ण वर्ण, धैवत का पीतवर्ण, तथा निषाद सभी वर्णों (षड्ज से धैवत तक) से युक्त (कबूतर के रंग से मिलता-जुलता) है।

मंतगोक्त स्वर के इन रंगों के सम्बन्ध में कुछ मत-मतान्तर तथा कुछ भ्रान्तियाँ हैं। कुछ लोग स्वरों के इन सात रंगों का इन्द्रधनुष के सात रंगों से साम्य बैठाने की

चेष्टा करते हैं, कुछ लोग लाल रंग की अनुपस्थिति को अप्रत्याशित मानते हैं । इसी प्रकार षड्ज, ऋषभ तथा निषाद आदि स्वरों के सम्बन्ध में भी कुछ प्रश्न उठाये जाते हैं ।[8] यहाँ हम कुछ प्रमुख बिन्दुओं पर विचार करेंगे ।

उपर्युक्त स्वर-वर्ण योजना से यह तो सुस्पष्ट है कि इनका इन्द्रधनुषी रंगों से कदापि साम्य नहीं है तथा यह भी स्पष्ट है कि किसी भी स्वर का रंग लाल नहीं है । इसके अतिरिक्त षड्ज, ऋषभ तथा निषाद स्वरों के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचार-वैषम्य है । इसलिए इसका स्पष्टीकरण समीचीन होगा ।

षड्ज स्वर के सम्बन्ध में—मतंग ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि षड्ज का वर्ण पदमपत्र प्रभः अर्थात् हरा है । कृत्रिम रंगों की बात छोड़ भी दें तब भी स्वयं प्रकृति में ही हरे रंग के अनेकों आभा-भेद (shades) विद्यमान हैं, देखा जाय तो प्रायः हर पेड़-पौधे की पत्ती का रंग हरा ही होता हैं किन्तु एक का दूसरे से सादृश्य नहीं होता । इसीलिए सत्यद्रष्टा ने षड्ज का रंग सामान्यीकरण रुप में 'हरित' न कहकर यथार्थ को यथावत् रखना ही उचित समझा होगा । कमल के पत्ते का रंग हरा ही होता है फलस्वरूप पद्मपत्र (कमल का पत्ता) की प्रभा, आभा अथवा द्युति वह भी तो हरित ही होगी । हाँ कमल के पत्ते की ऊपरी सतह निचली सतह से अधिक तीव्र (गाढ़ी) व द्युतिमान होती है जो प्रत्येक वनस्पतियों की पत्तियों के साथ है और वह ऊपरी सतह का सूर्य-रश्मियों के सीधे सम्पर्क में आने तथा क्लोरोफिल (Chlorophyll) की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में उपस्थिति का परिणाम होता है; ऐसी स्थिति में पद्मपत्र की ऊपरी सतह जो हमारी दृष्टि में पहले पड़ती हैं साथ ही द्युतिमानता के कारण निचली सतह से अधिक प्रभावशाली एवं अपेक्षाकृत अधिक सुग्राह्य (perceptible) होती है, संभव हैं 'पद्मपत्र प्रभः' से मुनि का आशय इसी ऊपरी सतह के आभायुक्त रंग से हो किन्तु किसी भी दशा में उसे हरित ही कहेंगे ! उल्लेखनीय यह है कि संगीत-रत्नाकर जैसे ग्रन्थ में विना कोई पूर्व उल्लेख किये षड्ज का रंग 'पद्ममाभः[9]' तथा संगीत मकरन्द में सीधा-सीधा 'कमल[10] वर्ण' उद्धृत है । संगीत रत्नाकर के टीकाकार कल्लिनाथ ने भी मूल स्रोत 'पद्मपत्रप्रभः' का कोई उल्लेख किये बिना 'पद्माभो रक्तवर्णः षड्जः'[11] कहकर भ्रम की एक और परत चढ़ा दी है । मूल स्रोत के प्रति उपेक्षा का यह भाव आगे भी बना रहा । सानुनय यह उल्लेख्य है कि डॉ० आर० के० शृंगी–डॉ० प्रेमलता शर्मा द्वारा अनूदित संगीत रत्नाकर की विवरणात्मक टीका (प्रकाशित ई० सन् 1978) में भी मतंगोक्त मूलस्रोत यानी 'पद्मपत्रप्रभः षड्ज' की कोई चर्चा नहीं हुई है ।[12] यहाँ तक कि हाल ही के वर्षों में, बृहद्देशी के शोध पूर्ण अध्ययन (शोधार्थी डॉ० अनिल बिहारी व्यौहार) में मतंग के कथन को यथावत् उद्धृत तो किया गया है किन्तु वहाँ 'पद्मपत्रप्रभः' का अर्थ हरा नहीं अपितु रक्त (लाल) वर्ण बताया गया है ।[13] अस्तु ।

इस लघु लेख में संभव नहीं कि इन बिन्दुओं को विस्तार दिया जा सके किन्तु यहाँ एक रोचक उल्लेख अवश्य समीचीन होगा । ऊपर जैसा कि 'पद्मपत्र प्रभः' का अर्थ के स्थान पर 'पद्माभः' अथवा 'कमल वर्ण' आदि का ग्रहण करते हुए उसका अर्थ रक्त अथवा लाल लिया गया है वस्तुतः वह भी उचित नहीं है । क्योंकि कमल के फूल का रंग जिसे नाट्यशास्त्र में 'पद्मवर्ण' कहा गया है ।[14] वह लाल नहीं हैं अपितु वह लाल और श्वेत का मिश्रण है जिसे 'गुलाबी' कहा जायेगा न कि लाल ।

यहाँ एक और उल्लेख महत्वपूर्ण प्रतीत होता है । मतंग को यदि पद्म के साथ जोड़कर हरित के अतिरिक्त लाल-गुलाबी आदि किसी रंग को बताना होता तो वे छन्द का गुरु-लघु क्रम भंग किए बिना 'पद्मपुष्प प्रभः' भी तो कह सकते थे । वे अवांछित रूप से भला 'पद्मपत्र' की बात क्यों करते ?

त्रिगुणात्मक सत्ता (सत्त्व, रज, तम) के परिपेक्ष्य में, अन्य छः स्वरों का जन्मदाता (कर्म में प्रवृत्त) होने के कारण षड्ज को रजोगुण प्रधान कहा गया है । पारम्परिक अवधारणा के अनुसार रजोगुण का रंग लाल अवश्य है किन्तु इसका मूल विकिरण स्रोत 'हरित वर्ण' ही है और लाल तो मात्र उसका विवर्तन है ।[15] तब निश्चित रूप से षड्ज का (वास्तविक) रंग हरा ही हुआ ।

षड्ग के साथ हरे रंग की संगति का एक और उल्लेख-नीय पक्ष है । षड्ज को 'गीर्वाण कुल संभूतः' कहा गया है

तथा षड्ज स्वर के ध्यान के अन्तर्गत षड्ज स्वर का स्वरूप शंकर के पुत्र के रूप में चित्रित किया गया है। एक मत के अनुसार षड्ज का जन्मस्थान मूलाधार चक्र कहा गया है।[16] नृत्य की विशेष रचना 'आमद' का देवता गणेश को कहा गया है और उस रचना का रंग हरा उल्लेखा किया गया है।[17] इन तथ्यों के विश्लेषण-संश्लेषण से भी षड्ज के हरे रंग की ही पुष्टि होती है। रजोगुण का कर्मप्रधान, अहंभाव पूरित होना तथा उसका (मूल स्रोतीय) रंग हरा होना, दूसरी ओर षड्ज का स्वनाम के ही अनुरूप षट्स्वरों का उत्पादक (जनक) होना अर्थात् कर्म-प्रधान भाव, साथ ही उसका रंग भी हरा होना—षड्ज के रंग के केन्द्रीभूत ये सभी संयोग-साम्य ध्यान देने योग्य हैं।

ऋषभ स्वर के संबंध में :—मतंग ने इस स्वर को 'शुकवर्ण' कहा है। शुक यानी तोते का रंग हरित-पीत होता है और यह पद्मपत्र के हरित से भिन्न है। विद्वानों में यहाँ भी किंचित् वैमत्य है। विद्वानों का एक वर्ग षड्ज के रंग 'पद्मपत्रप्रभः' को तो यथावत् स्वीकार करता है किन्तु ऋषभ के शुकवर्ण को तोते का हरित-पीत वर्ण न स्वीकार करके अपितु तोते की चोंच यानी रक्तिम (लाल) वर्ण मानता है।

वस्तुतः षड्ज और ऋषभ के रंग को लेकर विद्वानों में बृहदेशी से हटकर एक पृथक धारणा है किन्तु धारणाओं का पारस्परिक पार्थक्य भी ध्यान देने योग्य है। वहाँ एक उभयनिष्ठ धारणा यह दृष्टिगत होती है कि षड्ज और ऋषभ में से कोई एक स्वर रक्त वर्ण का अवश्य होना चाहिए। रक्त वर्ण के प्रति इस विचारधारा के मोह का एक कारण संभवतः षड्ज तथा ऋषभ इस स्वर-युग्म का 'रौद्र, वीर तथा अद्भुत' रसों का संवाहक होना हो सकता है। स्मरणीय है कि रस के प्रसंग में षड्ज तथा ऋषभ स्वर को स्पष्ट रूप से 'रौद्र-वीर-अद्भुत' का संवाहक कहा गया है। दूसरी ओर इन रसों के केन्द्रीभूत स्थायीभाव के परिपेक्ष्य में सामान्य रूप से लाल रंग की संगति को ही स्वीकार किया गया है। वस्तुतः संगति बैठाने की संभावनाएँ तो अनेक हो सकती हैं किन्तु किसी भी स्थिति में संगति अथवा संभावनाओं के आधार पर क्या यथार्थ पर आवरण का आक्षेप उचित होगा ?

निषाद स्वर के सम्बन्ध में—मतंगोक्त 'निषाद सर्ववर्णोऽयं' के प्रसंग में विद्वानों में दो मत हैं। एक मत के अनुसार निषाद का रंग सभी रंगों के मिश्रण से तैयार कोई एक रंगा (homogeneous) वर्ण होना चाहिए जो कबूतर के रंग जैसा बनता है और दूसरे मत के अनुसार निषाद का रंग कर्बुर (चितकबरा) होना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि मतंग ने कर्बुर जैसे रंग का कोई उल्लेख नहीं किया है, यह धारणा संगीत रत्नाकर आदि परवर्ती ग्रन्थों की देन है। मेरी राय में सर्ववर्णो से युक्त हरित आदि सभी रंगों का 'एकरूप मिश्रण' यह अधिक उचित प्रतीत होता है। इस धारणा का आधार यह है कि जब हम यह कहते हैं 'निषीदन्ति स्वराः सर्वे....' अर्थात् (सप्तक का अन्तिम स्वर होने के कारण) निषाद पर सा से ध तक के सभी स्वर आकर समाप्त हो जाते हैं,यात्रा-विराम (break journey) करते हैं। वहाँ इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि ये स्वर वहाँ अलग-अलग दिखायी पड़ने लगते हैं अपितु वे तो वहाँ पहुँचकर अपनी सत्ता समाप्त करके 'एकरूप-स्वर निषाद' की सृष्टि करते हैं न कि 'बहुरूप-कर्णगोचर निषाद' की। वस्तुतः ऐसी स्थिति में भी जबकि 'सर्ववर्णोऽयं' के द्विअर्थी होने की यत्किंचित् भी संभावना है तब क्यों न सीधे और तर्कसम्मत पथ का अनुसरण किया जाय ? यदि निषाद के ध्वनिगत स्वरूप की उसके वर्णगत (रंग सम्बन्धी) स्वरूप के अवबोधन (perception) में कोई अप्रयास संगति बैठ जाती है तो उसे स्वीकार करने में हर्ज क्या है ? निष्कर्षतः निषाद स्वर का रंग 'सर्ववर्णोऽयं' अर्थात् 'एक रंगा' (कबूतर के रंग जैसा) ही स्वीकार किया जाना उचित होगा।

विशेष-रंगों की इस योजना में 'षड्ज, मध्यम तथा पंचम' स्वरों का त्रिक तथा इनके रंग किंचित् विशेष चर्चा के विषय हैं। पहली बात तो यह है कि ये तीनों स्वर चतुःश्रुतिक हैं और इनके रंग सत्व, रज तथा तम, इन तीनों गुणों के संवाहक हैं (स्मरणीय है कि श्वेत, हरित तथा कृष्ण, ये तीनों गुणों के मूल-विकिरण स्रोतीय रंग हैं)। रोचक तथ्य यह है कि प्राचीन सप्तक की अवरोही स्वर-व्यवस्था 'म ग रे सा नि ध प' में 'म-सा-प' की

अवरोही अवस्थिति के कारण वह स्वरूप सत्व, रज, तम के इस क्रम से भी साहचर्य रखता है अर्थात् म (सत्व-श्वेतरंग), सा (रज-हरितरंग) तथा प (तम-कृष्ण रंग)। दूसरी ओर मध्यम स्वर को 'अविनाशी' स्वीकार किया जाना, अष्टचक्रीय रंगों का अलातचक्रवत् परिभ्रमण करने पर वहाँ श्वेत रंग का ही दृष्टिगोचर होना सूर्य की सप्तरंगी किरणों का समवेत रूप में श्वेत (उज्ज्वल) दिखायी पड़ना आदि तथ्य भी बड़े महत्त्व के हैं। इसी प्रकार पंचम स्वर का कोयल से सम्बन्ध एवं पंचम के रंग (कृष्ण) का कोयल के रंग से सादृव्य-साहचर्य भी रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है।

(मतंगोक्त कथन की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हुए, 'नादार्चन' वार्षिकी के आवरण पृष्ठ पर षड्जादि सातों स्वरों के रंग के यथावत् प्रस्तुतीकरण का प्रयास, अवलोकनार्थ निवेदित है।)

(ग) 'स्वरों के रंग' विषयक विवेचन की पासंगिकता—यद्यपि रंग विषयक यह लघु चर्चा स्वरों के रंग के केन्द्रीभूत हो तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से उसके सहसम्बद्ध विन्दुओं तक ही सीमित है किन्तु रंगों की व्यापक पृष्ठभूमि तथा सांगीतिक स्वरों की रंग विषयक सम्पूर्ण चर्चा के विवेचन के पश्चात जो तथ्य प्रकाश में आये हैं वे कितने महत्वपूर्ण हैं यह कहने की आवश्यकता नहीं है। संपूर्ण सृष्टि में रंगों की व्याप्ति, चित्रादि ललित कलाओं के प्रसंग में रंगों की भूमिका आदि से परिचय के अतिरिक्त 'स्वरों के रंग विषयक' इस चर्चा का सांगीतिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है।

जैसा पूर्वोल्लेख में कहा जा चुका है प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपों में संगीत के अन्तर्गत रंगों की चर्चा अनेक प्रसंगों में की जा चुकी है। जैसे—जाति, राग, रागध्यान, रागमाला चित्र, श्रृङ्गार-करूण आदि रस तथा जैसा कि इस लेख में प्रकाश डाला गया—स्वरों के रंग एवं ध्यान, आदि-आदि विषयो के प्रसंग। यहाँ रेखाङ्कित करने योग्य तथ्य यह है कि प्रसंगगत भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियो में परस्पर साम्य नहीं है। यहाँ तक कि किसी एक प्रसंग में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, जैसा स्वरों के रंगों के प्रसंग में भी देखा गया। उक्त बिषयों केसाथ रंगों की एकसूत्रता और मतंगोक्त स्वरों के रंग—अमिधान की इस प्रामाणिकता को देखते हुए उक्त सांगीतिक विषयों के अन्तःसाम्य एवं सामंजस्य की संभावनाओं का अभिज्ञान किया जा सकता है। इससे उक्त विषयों से सम्बद्ध अनेक गुत्थियों तथा विसंगतियों को भी सुलझाया जा सकता है जो राग, रस आदि के साथ रंगों के परिप्रेक्ष्य से जुड़ी हुई हैं। इस प्रकार इन क्षेत्रों में चिन्तन-मनन का एक नवीन मार्ग प्रशस्त होगा। इस अध्ययन के लिए संगीत शास्त्र के परंपरागत ग्रन्थों के अतिरिक्त इन विषयों से जुड़े कृष्ण यजुर्वेद, नारदीय शिक्षा आदि कुछ संगीतेतर ग्रन्थों का भी ग्रहण किया जा सकता है जहाँ ध्वनि अथवा स्वरों की चर्चा अवान्तर प्रसंगों में की गयी है। स्वर के माध्यम से संगीत में रंगों की समवाय-सम्बद्धता तथा प्रत्यक्ष और परोक्ष रूपों में रंगों की भूमिका को देखते हुए सांगीतिक परिप्रेक्ष्य में अन्तरवलम्बित (Interdisciplinary) अध्ययन के नूतन क्षितिज का भी विस्तार होगा।

स्वरों के रंग के प्रत्यक्षीकरण (perception) की संभाव्यता, आज के परिसीमन में—जब हमारे श्रवण में प्रथम बार यह आता है कि ध्वनि का भी रंग होता है तो सुनकर बड़ा अटपटा सा लगता है, कदाचित् यह विश्वास ही नहीं होता कि ध्वनि का भी रंग हो सकता है किन्तु रंगों की संपूर्ण पृष्ठभूमि तथा सांगीतिक स्वरों के रंग, इस परिधि के अन्तर्भूत अन्यान्य बिन्दुओं के विश्लेषण के पश्चात् अब यह भली-भाँति स्पष्ट हो चुका है कि ध्वनि का भी रंग होता और स्वर तथा उसके रंग का एकात्मिक प्रत्यक्षीकरण संभव है। आज के परिप्रेक्ष्य में भी, इस एकत्व को देखना दुस्साध्य भले हो किन्तु अध्यात्म एवं विज्ञान की समन्वयात्मक अधुना प्रवृत्ति को देखते हुए ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आज की परिसीमाओं में भी स्वर तथा रंग की एकात्मकता का प्रत्यक्षीकरण आने वाले दिनों में अवश्य ही संभव हो सकेगा।

यद्यपि स्वर के साथ उनके रंगों के एकत्व का दर्शन मूलतः (originally) भारतीय मनीषा की देन है और इस

प्रकार की जटिल एवं रहस्यात्मक उपलब्धियों के अनेकों उदाहरण हमारे शास्त्र ग्रन्थों में देखे जा सकते हैं तथापि यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए कि आज हम वहाँ नहीं है जहाँ पहले थे।

सम्पूर्ण विश्व एक मत से यह स्वीकार करता है कि ज्ञान-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में भारत सर्वाग्रणी रहा है। आज पाश्चात्य विज्ञान जगत् के लिए जो असंभव अथवा अनुसंधान का विषय बना हुआ है वह हमारे दिव्यदृष्टि सम्पन्न ऋषियों के लिए संभव ही नहीं सहजसाध्य भी था। एक ग्रह से दूसरे ग्रह की यात्रा करना, एक ही स्थान पर बैठे-बैठे सहस्रों मील के घटना-क्रम का दृश्यावलोकन करना, एक ही समय में भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों का दर्शन करना (त्रिकालदर्शी होना), सृष्टि में व्याप्त समस्त ऊर्जा तत्त्वों के स्वरूप तथा एक के दूसरे में रूपान्तरण का प्रत्यक्ष अवबोधन करना आदि-आदि अलौकिक सहश दिखने वाले ये क्रिया कलाप दिव्य शक्ति सम्पन्न मनीषियों के लिए सर्वथा सहज हुआ करते थे। आज हम जहाँ सत्य का अनुसंधान-अन्वेषण विज्ञान की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओं में करते हैं, हमारे सत्यानुसंधानी वही अनुसंधान-अन्वेषण आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक शक्तियों तथा इडा-पिंगला-सुषुम्ना के त्रिवेणी संगमों के मूलाधार आदि चेतना केन्द्रों से सम्पूरित 'मन-प्राण-वाक्' की इस शरीर-पिण्ड की प्रयोगशाला में करते थे। 'ऊर्जा एवं चेतना का जो महापुंज ब्रह्म में है वही हमारे काय-पिण्ड में वर्तमान एक-एक कोषों में स्फुरित हो रहा है; (स्मरणीय है कि हमारे शरीर में ऐसे लगभग पिचहत्तर हजार अरब कोश हैं[20] और पृथक्-पृथक् सभी कोषों में वहीं ऊर्जा विद्यमान है।) हम एक विशाल अपरिमित, अक्षय सम्पदा के स्वामी हैं।' हमारे ऋषियों ने इस रहस्य को भलि भाँति समझा था, इस अन्तः शक्ति-स्रोत का आत्मसाक्षात्कार किया था और यही प्रयोगशाला थी उनके अलौकिक अनुसंधान की। किन्तु परम्परया इस गुरुमुखी विद्या के ज्ञान-विज्ञान का मौखिक पद्धति से आदान-प्रदान होने के कारण आज उस दिव्य प्रयोगशाला से संयोग कराने वाला हमारा सम्पर्क-सूत्र कदाचित् टूट चुका है। अथवा उस दिव्य प्रयोगशाला का गन्तव्य पथ कदाचित् विस्मृत हो गया है। आवश्यकता है ऐसी युक्ति की जिसके द्वारा अलौकिक दृष्टि का वह पथ पुनः आलोकित हो उठे और उस आलोक में 'स्वरों के रंग' जैसे रहस्यात्मक विषयों का उद्घाटन हो सके। आज विज्ञान भी स्वीकार कर रहा है कि ध्वनि के साथ उसके प्रकाश (रंग) को भी देखा सकता है। जैसा मैंने पहले एक पूर्वोक्त उल्लेख में कहा कि उच्च तारता पर ध्वनि का प्रकाश (रंग) में रूपान्तरण हो जाता है इसी क्रम में पश्चिम में यह प्रयोग-परीक्षण भी चल रहा है कि स्वर सप्तकों की भाँति प्रकाश रश्मियों के भी सप्तक बनते हैं और स्वर सप्तकों के ही समान हमारे शरीर-पिण्ड में स्थित आज्ञा आदि चेतना केन्द्रों से इनका सीधा सम्बन्ध है। अज्ञात को समझने के लिए ज्ञात का, सूक्ष्म को समझने के लिए स्थूल का सिद्धाश्रम को प्रयोगशाला तक पहुँचने के लिए यदि अधुनाविज्ञान की प्रयोगशाला का आश्रय लेना पड़े तो इसमें अनुचित भी क्या है ? और यह कोई नया उद्बोधन भी तो नहीं है। यह तो आचार्य विनोवा भावे, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द (प्रो० प्रमथनाथ मुखोपाध्याय), बाबा आनन्द मूर्ति (प्रभात रंजन सरकार), श्री राम शर्मा आचार्य तथा ओशो रजनीश प्रभृति अधुना विभूतियों-मनीषियों का आह्वान है जिन्होंने अध्यात्म तथा विज्ञान के समन्वय की आवश्यकता का पुनः पुनः स्मरण दिलाया है। उल्लेखनीय तथ्य तो यह है कि जब क्रिस्टोकर हिल्स (Nulcear Evolution तथा Supersensonics जैसी पुस्तकों के प्रणेता) जैसा पाश्चात्य विज्ञानी-चिन्तक पौर्वत्य-पाश्चात्य के समन्वय से सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्यों का निदर्शन कराने में सक्षम है तो हमें इस मार्ग का अनुसरण करने में संकोच क्यों ?

महान् रूफी सन्त-संगीतज्ञ इनायत खाँ ने भी कहा है 'आवाज केवल सुनी ही नहीं जा सकती बल्कि देखी भी जा सकती है किन्तु उनके द्वारा जो उन्हें देख सकते हैं ?'[21] संभव है पौर्वत्य एवं पाश्चात्य के समन्वय-सामञ्जस्य से समुद्भूत अध्यात्म एवं विज्ञान से सपूरित किसी ऐसे दिव्य पथ का अनुसंधान हो सके जिसके आलोक में हमारा गन्तव्यपथ पुनः प्रकाशमान हो उठे। समन्वय एवं साहचर्य के इस प्रसंग में उपसंहार स्वरूप ऋक् संहिता का उपसंहार (अन्तिम मंत्र) हृदयंगम के योग्य है—

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥
—ऋ० 10/191/4
(ऋक्संहिता का अन्तिम मंत्र)

अर्थात् तुम लोगों का हृदय समान हो, संकल्प समान हो, मन समान हो, जिस प्रकार यह तुम्हारा साहचर्य बहुत सुन्दर बन सके।

टिप्पणियाँ

1. न्युक्लीयर इवोल्युशन / 171 तथा 177
2. दूरदर्शन 'ताना बाना' धारावाहिक दि० 22 अगस्त 1992 के माध्यम से प्रसारित सूचना के आधार पर।
3. न्युक्लीयर इवोल्युशन—174
4. एक ऐंगस्ट्रॉम (angstrom) का मान एक सेण्टीमीटर का दस करोड़वाँ हिस्सा (1/100000000 से. मी.) होता है।
5. न्युक्लीयर इवोल्युशन / 171 तथा 177
6. संगीत मासिक मार्च 1990 / 16
7. बृहद्देशी / 19–20
8. इस प्रकार के प्रश्न विमेष रूप से 'नादार्चन' प्रवेशाङ्क (1991) के आवरण पृष्ठ के सन्दर्भ में पत्राचार तथा मौखिक रूप से साक्षात्कार के माध्यम से उठाये गये हैं।
9. सं० र० /1/3/54
10. संगीत मकरन्द/7
11. सं० र० कल्लिनाथ टीका/1/3/54
12. संगीत रत्नाकर आँफ शाङ्गदेव /154
13. मतंगकृत बृहद्देशी का अध्ययन (शोध प्रबन्ध डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार) / 110
14. विवरणार्थ, डॉ० विमला मुसलगाँवकर का शोध प्रबन्ध-भारतीय संगीत शास्त्र पर विभिन्न दर्शनों का प्रभाव, /125
15. न्युक्लीयर इवोल्युशन / 171 तथा 177
16. प्रज्ञा (कान ह. वि.) 1976–77/125
17. छायानट त्रैमासिकी अप्रैल–जून 1982 / 73–74
18. नाट्यशास्त्र 28 वाँ अध्याय (आचार्य बृहस्पति) / 321
19. सं. रं. / 1 / 3 / 54, मूल तथा कल्लिनाथ–टीका।
20. अखण्ड ज्योति मासिक, अगस्त 1992 / 25
21. संगीत-सूफी हनायत खाँ / 60

सहायक ग्रन्थ

– ध्वनि और संगीत—प्रो० ललित किशोर सिंह, 1977

– नाट्यशास्त्र 28 वाँ अध्याय—आचार्य बृहस्पति, 1986

- बृहद्देशी, मतंगमुनि प्रणीत (के साम्बशिवशास्त्रीसंशोधित), 1928
- वेद व विज्ञान, स्वामी प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती प्रणीत, अनुवादिका–डॉ० ऊर्मिला शर्मा, 1992
- श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, 1973
- संगीत रत्नाकर शार्ङ्गदेवप्रणीत, प्रथम खण्ड, अड्यार संस्करण, 1943
- संगीत मकरन्द, नारद विरचित, लक्ष्मी नारायण गर्ग-सम्पादित, 1978
- संगीत–सूफी इनायत खाँ, अनुवादिका ललिता नागराज, 1992
- स्वरोदय विज्ञान, योगिराज यशपाल, 1989
- पत्रिका, त्रैमासिकी छायानट संगीत नाटक अकादमी उ० प्र० अप्रैल-जून 1982
- पत्रिका, प्रज्ञा (का. हि. वि.) हीरक जयन्ती विशेषांक) 1976-77
- पत्रिका, संगीत मार्च 1990, संगीत कार्यालय हाथरस ।
- पत्रिका, अखण्ड ज्योति, श्रीरामशर्मा आचार्य, अगस्त 1992
- शोध प्रबंध, मतंगकृत बृहद्देशी का अध्ययन, डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार 1984
- शोध प्रबन्ध, भारतीय संगीत-शास्त्र पर विभिन्न दर्शनों का प्रभाव डॉ० श्रीमती विमला मुसलगाँवकर 1980
- Nuclear Evolution, by Christopher Hills, 1977
- Sangita Ratnakar of Sargadeva; by Dr. R. K. Shringy and Dr. Prem Lata Sharma, 1978
- University Physics; by Hugh D. Young, Mark W. Zemansky & Francis W. Sears, 1988

✱

रंग क्या है ? यह प्रकाश का एक पहलू है ।....रहस्यवादी दृष्टिकोण से अभिव्यक्ति का पहला पहलू जो बुद्धि को सचेत करता है, वह है ध्वनि और दूसरा पहलू है प्रकाश (रंग) ।....रंग भी गति है, उसकी क्षमता रंग को दृष्टि के सामने मूर्त कर देती है । साथ ही, हालाँकि हम किसी रंग को हरा, लाल, पीला कह सकते हैं, पर प्रत्येक रंग प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग (subjective) है। रंगों के सूक्ष्म क्रमों में लोग एक जैसा नहीं देखते क्यों कि प्रत्येक की क्षमता अलग है । दूसरे शब्दों में स्वरों और रंगों के अलग मूल्य नहीं हैं, पर वह हमारे लिए अलग दीखते हैं जब हम उन्हें महसूस करते हैं । हमारे सम्बन्ध में वे अलग हैं । ...

आवाज़ और रंग में सम्बन्ध है । वास्तव में वे दोनों एक हैं ।....रंग ही ध्वनि है और ध्वनि ही रंग है ।....आवाज़ और रंगों की एकता श्वास के विज्ञान के अध्ययन और अनुभव करने से पायी जा सकती है ।

—सूफ़ी इनायत खाँ

सांगीतिक समस्याएँ

—डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित

समस्याएँ कहाँ नहीं है ? वर्तमान समय में प्रदेश, देश तथा विदेशों को भी समस्याओं ने घेर रखा है। धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सभी स्तरों पर विभिन्न प्रकार की समस्याएँ मुंह उठाए खड़ी हैं। वस्तुतः विश्व स्तर की, राष्ट्रीय स्तर की तथा अन्य विषयों की अनेकानेक समस्याओं के विषय में मेरा ज्ञान अति अल्प है।

जिस वातावरण में मैं पला-बढ़ा हूँ; जिस विषय को-विषय के धुरंधरों से, सीखने-समझने का बाल्यकाल से अवसर मिला है; जिस विषय की पठन-पाठन की समस्याओं से तीन दशकों से जुड़ा हूँ तथा संगीत-प्रयोजकों, संगीत-आयोजकों, संगीत शास्त्रियों, संगीत समीक्षकों, संगीत-शिक्षकों, संगीत-शिक्षार्थियों तथा संगीत-रसिकों की जिन विभिन्न समस्याओं के विषय में जाना है, सोचा है—अनुभव किया है उनके विषय में क्रमिक चर्चा प्रस्तुत है। समस्याएँ अनेक हैं। समाधान के कुछ सुझाव भी हैं किन्तु प्रयत्न कई स्तर पर होने होंगे। सामुहिक प्रयास करने होंगे। क्यों न पहले इस लेख से ही करें ?

संगीत-प्रयोजकों की समस्याएं :

कभी सोचा है पाठकों कि, इस छियासी करोड़ की आबादी में सर्वजन-मान्य, विद्वत्गण-मान्य छियासी कलाकार क्यों नहीं है ? क्या कभी विचार किया कि संगीतोद्धारक पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के पास दीक्षा प्राप्त अनेक शिष्यों में से 'संगीतमार्तंड' एक अकेला क्यों हुआ ? मैहर के बाबा संगीतमनीषी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के अनेकानेक शिष्यों में से 'रवि' तो एक रविशंकर ही हुए न ? जन्मजात प्रतिभा; उपयुक्त गुरु की कृपा, उनके बताये रास्ते पर विकास करने का धैर्य, लगन तथा तत्परता; सही अवसरों की प्राप्ति; उनसे फ़ायदा उठाने की क्षमता, कुनेह तथा विवेक और इन सबसे भी बढ़कर प्रारब्ध, कला के उपासक को कलाकार बनाते हैं। कई गायक है, अच्छे भी हैं किन्तु गुमनामी के अंधेरों में खो गये। कई वादक हैं, सच्चे (सच्चे अर्थों में) भी है किन्तु, गुणियों ने उन्हें नहीं माना—रसिकों ने उन्हें नहीं जाना। प्रतिभाएँ उनमें भी थी, तपस्या उन्होंने भी की थी किन्तु, यह कला-जगत कोरा गणित तो नहीं कि, पचास गुना पारिश्रमिक लेने वाला पचास गुना, अरे पाँच गुना भी गाता बजाता है या नहीं उसका हिसाब बिठाया जा सके ? कला प्रयोजकों के लिये एक निश्चित् आसन पर पहुँच जाने के बाद उस स्थान को बचाये रखने की, संभाले रखने की समस्या है। श्रोता के दिल में जो सम्मान, जो आदर, जो स्नेह उन्होंने प्राप्त किया है उसकी रक्षा की समस्या है। बढ़ती जाती उम्र के साथ अपने स्तर को बनाये रखने की समस्या है। स्वेच्छा से समय रहते निवृत्त होने—न होने की समस्या है।

संगीत-आयोजकों की समस्याएँ :

जो नाम बिकता है—जिसके नाम से टिकट बिकते हैं उन्हें ही आमंत्रित करने की चूहा-दौड़ में नवोदित प्रतिभाओं के साथ न्याय नहीं हो पाता। यदि कभी अखिल भारतीय स्तर के संगीत-सम्मेलन में अवसर मिल भी जाता है तो इन नवागंतुकों के साथ श्रोता सहानुभूति नहीं दिखा पाते। प्रतिभा में निखार एवं परिपक्वता के अभाव में अवसर नहीं मिलते तथा अवसर नहीं मिलने के कारण योग्य प्रश्रय के अभाव में प्रतिभा निखर नहीं पाती, परिपक्वता आ नहीं पाती।

संगीतशास्त्रियों की समस्याएं :

पं० भातखंडे, ठाकुर जयदेव सिंह, पं० ओंकार-नाथ ठाकुर, आचार्य वृहस्पति, डॉ० आर० सी० मेहता तथा डॉ. प्रेमलता शर्मा के सत्प्रयत्नों के उपरान्त भी; बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में भी अधिकांश लब्ध-प्रतिष्ठ गायक-वादक शास्त्र को प्रयोग से पृथक् और अनावश्यक

समझते हैं। समयका अपव्यय समझते हैं। लक्ष्य-लक्षण की पवित्र ग्रंथिको समझ नहीं पाते, समझना भी नहीं चाहते।

संगीत-समीक्षकों की समस्याएँ :

प्रायः देखा गया है कि, भाषा पर प्रभुत्व रखनेवालों का सांगीतिक ज्ञान अत्यन्त सीमित होता है। संगीत की बारीकियों से अवगत हैं तो परम्परा, घराना तथा पूर्वाग्रह की कूपमंडूकता से उबर नहीं पाते। भारतीय संगीत का दुर्भाग्य है कि, स्वस्थ, तटस्थ, निष्पक्ष और सन्तुलित संगीत-समीक्षा का अभाव है। कभी अतिरंजित है तो कभी अकारण कठोर। अन्य किसी को लपेटने के स्थान पर मेरे अपने, करीब बीस वर्ष पूर्व हुए 'कल के कलाकार' सम्मेलन के कार्यक्रम की दो भिन्न-भिन्न समीक्षाओं के संक्षिप्त अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक ने लिखा—डॉ. दीक्षित पंडित जी की गायकी के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। दूसरे का विचार था—प्रदीप जी को ज्ञान तो है, उनका गला ठीक नहीं–कोई वाद्य आजमाएँ। स्वतः स्पष्ट है कि, दोनों ही समीक्षाएँ गलत हैं।

संगीत शिक्षकों की समस्याएँ :

विषय की विशिष्टता को नहीं समझ पाने वाले अधिकारियों के अति आग्रह, कभी-कभी दुराग्रह के कारण खुली भर्ती को रोकने में असमर्थता; संगीत विषय को अत्यन्त सरल-सहज समझकर भेडियाधसान; विद्यालय में समुचित वाद्ययंत्र तथा अन्य साधनों की कमी; जिनको अन्य किसी विषय में प्रवेश नहीं मिल पाया हो वैसे लोगों का मजबूरी की अवस्था में संगीत विषय ग्रहण करना; शिक्षक-शिष्य के बीच की संवादिता समयाभाव में स्थापित नहीं हो पाती विश्वविद्यालय, महाविद्यालय (तथा विद्यालयों में कितने दिन 'पढ़ाई के दिन' होते है वह किसी से छिपा नहो है तथा अन्य विषयों की भांति संगीत जैसे प्रयोग-प्रधान विषय को संक्षिप्त अवधि में आत्मसात् कर लेने का असफल प्रयत्न; कुछ ऐसी समस्याएँ है जिनका सीधा सम्बन्ध संगीत-शिक्षकों से है। विश्वविद्यालयों में जहाँ स्वतंत्र संगीत-संकाय या स्वतंत्र-संगीत-विभाग हैं ऐसे गिने-चुने स्थानों को छोड़कर संगीत-शिक्षकों की स्थिति दयनीय चिन्तनीय तथा विषम है।

संगीत–शिक्षार्थियों की समस्याएँ :

वैसे तो आजकल किसी भी विषय में पढ़ाई पूरी कर लेने पर समुचित काम मिलना कठिन है। जहाँ–डॉक्टर, इंजीनियर, वकील जैसी खास पढ़ाई पूरी कर लेने पर भी समस्या पूरी तरह हल नहीं हो पाती— तो फिर जिस विषय में अवसर पहले से ही कम हों, वहाँ तो समस्या विकट होगी ही होगी।

पढ़ाई के समय देखे हुए कलाकार होने के सपने वास्तविक हालात की कठोर शिला से टकराकर चूरचूर हो जाते हैं। ऐसे अपरिपक्व 'जोशियों', 'गंधर्वों', 'किशोरियों' 'प्रतिभाओं' का भविष्य डगमगा जाता है–गड़बड़ा जाता है। कुंठा से ग्रस्त हो जाने पर जो विकास हो सकता था वह भी नहीं हो पाता।

अभिभावक पूरी साधन-सुविधा तो जुटा नहीं पाते किन्तु, संगीत विषय दिलाकर थोड़े ही समय में अपेक्षा करने लगते हैं कि उनके 'होनहार' रेडियों, टी. वी. में गाने-बजाने लग जाएँ। उनको कार्यक्रम-प्रशंसा-धन मिलने लगे।

प्रायः जिस प्रतिभा, लगन, स्वाध्याय, निष्ठा तथा परिश्रम की आवश्यकता होती है वह विद्यार्थियों में होती नहीं; उस पर कभी-कभी साथी-संगी बहका देते हैं कि, 'तुम कुछ हो, अजूबा हो, चमत्कार हो'। जिनमें प्रतिभा होती भी है उनका भी विकास किसी न किसी मोड़ पर किसी न किसी कारण से रुक जाता है।

प्रायः संगीत विषय लेनेवाले विद्यार्थियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होती। सभी को छात्रवृत्ति भी तो नहीं मिल पाती।

संगीत–रसिकों की समस्याएँ :

चोटी के कलाकारों का पारिश्रमिक इतना ज्यादा हो गया है (स्वाभाविक भी है—सभी वस्तुएँ मँहगाई की चपेट में आ गई है) कि आयोजक बाध्य हो जाता है कि, प्रवेश-पत्र की राशि अच्छी-खासी रखे। आखिर उसको कार्यक्रम के द्वारा कुछ प्राप्ति होनी चाहिए। वह लागत गँवाने तो नहीं बैठा है।

जाहिर है कि संगीत की समझ रखने वाले मध्य-वर्गीय श्रोता सुनने में असमर्थ हो जाते हैं अथवा बहुत पीछे रह जाते हैं। जो वर्ग पैसा खर्च कर सकता है उनमें से अधिकांश

की संगीत विषयक समझदारी संदिग्ध होती है। प्रायः नृत्य के कार्यक्रमों में या जिन कलाकारों को 'साधना' (दूरदर्शन द्वारा प्रसारित एक श्रेणी) या 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' द्वारा पहचान चुके हैं उन्हीं के कार्यक्रमों में आगेकी पंक्तियों के सोफे भरे रहते हैं।

सुधी श्रोताओं के समुचित प्रतिभाव के अभाव में कलाकारों की कला कभी निखर पाती है तो कभी 'व्यावसायिक' होकर रह जाती है। कई बार विराट संगीत-सम्मेलनों के स्थान पर घरेलू या छोटे पैमाने (मेरा अभिप्राय सीमित श्रोता वर्ग वाले) पर आयोजित कार्यक्रम अधिक सबल, विशेष सफल और संतोषप्रद होते हैं।

वैसे यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं कि 'गुण ना हिरानो, गुणी हिरानो'। आजका श्रोता अधिक पारखी, प्रबुद्ध और विवेकशील हो रहा है–होता जा रहा है। यहाँ आकाशवाणी और दूरदर्शन की संगीत-सेवा को भुलाया नहीं जा सकता। विभिन्न प्रतिष्ठानों द्वारा जारी किये गये एल. पी. रिकार्डस तथा केसेट्स (Music India) के योगदान भी महत्वपूर्ण है।

कुछ समाधान-कुछ सुझाव :

इस लघु लेख के प्रारंभ में मैंने समाधान–सुझाव का भी संकल्प किया था। कुछ बातें मैं लिख दे रहा हूँ—आप भी तो सोचते होंगे।

(1) कोई किसी को 'कलाकार' बनाता नहीं है। गणमान्य कलाकार का पुत्र-पुत्री-शिष्य-शिष्या कलाकार बन ही जायेंगे यह जरूरी नहीं है। विद्यालयीय शिक्षा-व्यवस्था की आलोचना करने वाले यदि ध्यान से देखेंगे तो पं. भीमसेन जोशी, पं. रविशंकर, मु. बड़े गुलाम अली खाँ, पं. किशन महाराज, मु. बिसमिल्लाह खाँ, पं. बिरजू माहराज प्रभृति के आसन को शीभायमान कर पाने वाले व्यक्ति का अभाव ही पाएँगे।

(2) संगीत-शिक्षा के स्तर में सुधार लाना हो तो, राष्ट्रीय पर्वपंद्रह अगस्त (स्वतंत्रता दिवस) तथा छब्बीस जनवरी (प्रजासत्ता का दिवस) को छोड़ कर कोई छुट्टी नहीं होनी चाहिए। सभी धर्मों के धार्मिक पर्वों, तैंतीस कोटि देवी-देवताओं तथा विभिन्न राजनैतिक-सामाजिक नेताओं का अधिक परिश्रम पूर्वक स्मरण किया जाना चाहिए—छुट्टी लेकर घर बैठ कर नहीं।

(3) पाठ्यक्रम में सुधार करने की दिशा में, उसे कुछ संक्षिप्त करने की आवश्यकता मुझे प्रतीत होती है। रागों की संख्या कुछ कम हो-उनका अध्ययन-अवगाहन कुछ अधिक हो।

(4) अधिक समय मिलने पर तथा पाठ्यक्रम कुछ संक्षिप्त हो जाने से विभिन्न शैलियों का ज्ञान केवल खानापूर्ति नहीं रहेगा। 'पसंद'(Choice) एक राग तैयार करने की वर्तमान परिपाटी-परिस्थिति समाप्त की जानी चाहिए।

(5) शिक्षकों—विशेषत. संगीत-शिक्षकों को समर्पित भाव से (With a dedicated missionary zeaee) प्रवृत्त होना चाहिए एवम् शिक्षार्थियों को कक्षा में नियमित अभ्यास में तत्पर तथा अपने विषय के प्रति निष्ठावान् होना चाहिए।

(6) 'सब कोई सब काम नहीं कर सकते' इस सूत्रको ध्यान में रखते हुए (प्रजातंत्र में सभी को समान अवसर प्राप्त होने चाहिए इस बात से इन्कार नहीं) विशेषतः ललित कला के क्षेत्र में जब विशेषज्ञ द्वारा जताया जाएकि, 'आप नहीं कर पायेंगे' उस अवस्था में संगीत सीखने का दुराग्रह छोड़ देना चाहिए।

(7) विद्यार्थियों को चाहिए कि, लब्धप्रतिष्ठ कलाकार की वर्तमान चरम अवस्था के पीछे उसकी कितनी तपस्या है, उसका कितना संघर्ष है, उसने क्या-क्या मुसीबतें झेली हैं उसका सदैव ध्यान रखें। कोई ऐसे ही चोटी पर नहीं पहुँच जाता–कोई ऐसे ही सफल नहीं हो जाता। 'सिद्धि' के पीछे सतत 'साधना' होती है।

शुभाशंसाएं

स्थिति इतनी भयावह नहीं है। परिस्थिति इतनी विकट नहीं है, चित्र इतना निराशा जनक नहीं है। आज ज्यादा लोग संगीत सीखते हैं, ज्यादा लोग संगीत सुनने है। भारतीय संस्कृति की इस अप्रतिम ललित कलाको विश्व स्तर पर मान्यता और समादर मिल रहा है। आवश्यकता है हम सबको प्रयोजकों, आयोजकों, संगीतशास्त्रियों, समीक्षकों, विद्यार्थियों तथा रसिकों को, मुझको-आपको मिलकर इस विशिष्ट कला के उत्थान के लिये सत्संकल्प करने की, प्रयत्नशील होने की, प्रामाणिक होने की, पूर्वाग्रह रहित होने की, विवेकी होने की तथा समर्पित भाव से संगीत सेवा करने की।

आदि संगीताचार्य प्रवर्तक भगवान् भूतभावन सबको सन्मति दें॥

□

कला के क्षेत्र में रसानुभूति

—विमला मुसलगाँवकर

'कला'—मानव को ईश्वर-प्रदत्त एक प्रतिभा-विशेष है; जो सर्व सामान्य प्राणियों के रञ्जन, शिक्षण तथा प्रेरणा की स्त्रोत तो है; किन्तु वह प्राणिमात्र की अर्जित शक्ति नहीं है। विरले ही उच्चकोटि के कलाकार एवं कलापारखी होते हैं। 'कला' तन्मयी अनुभूति, प्रतिभा, उर्वर कल्पनादि के सम्मिश्रण के फलस्वरूप निष्पन्न होने पर भी भगवत्कृपा से प्राप्त होती है। वस्तुतः वह जन्मजन्मान्तर के संस्कार विशेष से प्राप्त एक अलौकिक शक्ति है।

'विद्या' एवं 'कला' दोनों ही ज्ञान की प्रदायिका तथा वाहिका हैं; पर,दोनों में बहुत अन्तर है। हर 'विद्या' सृष्टि-विज्ञान से जुड़ी है तथा उसका ही अनावरण करती है। जब कि 'कला' मानव-प्रतिभा की विलक्षणता को पाकर असम्भव को सम्भव कर दिखाती है। निष्कर्ष यह है कि 'विद्या', सृष्टि-विस्तार-क्रम के वैज्ञानिक स्वरूपका निरूपण है; तथा 'कला' मानवीय प्रतिभा की नित-नूतन उपज का स्फुरण है। विद्या और कला का समन्वित रूप हम संगीत में देख सकते हैं। यथा–'विद्या' के रूप में वह विशिष्ट ज्ञान की पद्धति है, जिसे आप्त पुरुषों से ग्रहण कर, यथाक्रम ज्यों का त्यों पुनः उस ज्ञान–परम्परा को, भावी पीढ़ी के लिए प्रदान कर देते हैं। संगीत की प्रस्तुति में तो 'कला' का मुखर स्वरूप हम देखते ही हैं, संगीत-विषयक कुछ-एक महत्वपूर्ण प्रसंगों में भी 'कला' का प्रयोग द्रष्टव्य है। जैसे संग त के सन्दर्भ में 'कला' ताल के एक अंश के रूप में चर्चित है। कलाकृति के अर्थ में भी उसका प्रयोग हुआ है। संगीतरत्नाकर के तालाध्याय में[1] ताल के एक विभाग को भी 'कला' संज्ञा से अभिहित किया है। 'मार्ग तालों की 'निःशब्द-क्रिया' की संज्ञा भी 'कला' है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि ताल के सन्दर्भ में–'कला' संज्ञा का प्रयोग निःशब्द क्रिया के लिए हुआ है, जिस क्रिया का दृश्यरूप से सम्बन्ध है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि ताल के अंश रूप में 'कला' शब्द को संगीत में ग्रहण किये जाने पर सी इस 'सशब्द' के स्वरूप में कोमलता, मधुरता आदि लाने के लिए 'निःशब्ददृश्यक्रियाव्यापार' को 'कला' संज्ञादी है। यही नहीं 'क्रिया-संघात' के एक खण्ड को भी 'कला' संज्ञा से कहा है। निष्कर्ष यह है कि अंश के रूप में कलाकृति के रूप में, संघीय इकाई के रूप में स्वीकार कर संगीत के समस्त व्यापार में–इन विभिन्न प्रकार की क्रिया-इकाईयों को ही आकर्षक रूप में सजाकर सँवार देते हैं। विषयान्तर तथा विस्तारभय से इस प्रसंग को यहीं रोक रहे हैं। कहना इसलिए पड़ा है कि संगीत शास्त्रियों ने संगीत को 'विद्या' तथा 'कला' दोनों ही कोटि में प्रस्थापित किया है।

एक अन्य संज्ञा 'शिल्प शब्द का प्रयोग भी 'कला' के अर्थ में प्राचीन काल से चला आ रहा है। बंगाल में आज भी 'कला' या कलाकार को 'शिल्प' या 'शिल्पी' संज्ञा के रूप में प्रयोग करते हैं। वास्तव में 'शिल्प' वह 'साँचा' है जो भावानुभूतियों को ठोस पृष्ठभूमि देता है; इसी लिए वह भौतिकता के अधिक निकट है; और आंचलिक प्रभावों से विशेष प्रभावित होता है। किन्तु आज 'शिल्प' का रुढ़ अर्थ 'स्थापत्य' ही समझा जाने लगा है। मूर्तिनिर्माण प्रस्तर-टंकन, भवननिर्माण, आदि कार्य शिल्प के अन्तर्गत आ जाते हैं। शिल्प के सन्दर्भ में सामान्य धारणा यह है कि किसी कार्य को सुचारु रूप से कुशलतापूर्वक साध लेना ही 'शिल्प' है। अथवा कार्य में कुशलता अर्जित करने की संज्ञा ही शिल्प है।

'कलयति इति 'कला'[2]—जो नित्य नयी-नयी भाव तरंगों को उत्पन्न करे, निरन्तर गतिशील हो, वह 'कला' है 'नव-नवन्मेष शालिनी प्रतिभा[3] की भाँति कला में भी नित्य नूतनता की प्रधानता है। आह्लाद का एक मात्र कारण नवलता को ही हिन्दी कवि 'पंत' ने भी स्वीकारा हैं–"जगत् की सुन्दरता का चाँद सुहाता बदल-बदल दिन-रात नवलता ही जग का आह्लाद।"[4]

'कला' शब्द अनेकार्थी है। 'कला' एक अंश या टुकड़े को भी कहते हैं। इस संज्ञा से 'कला' के निर्माण कर्म में–प्रयोगात्मक प्रक्रिया की दो विशिष्ट विधाओं की ओर संकेत किया गया है। तात्पर्य यह है कि अंश-अंश जुड़ता हुआ पूर्णत्व को प्राप्त होता है तथा अंश-अंश का विघटन होने पर अपूर्णता को प्राप्त होता हुआ भी कलाकार या कलाधर (चन्द्रमा) कहलाता है।

नित्य नूतन, आह्लादक, और अंश अर्थ के अतिरिक्त 'कला' शब्द का एक अन्य अर्थ भी है 'संख्या'। शास्त्रों में–'कला' के इन सभी पक्षों की विशद मीमांसा हुई है। 'कला' की विभिन्न संख्याओं की चर्चा 'कामशास्त्र' में भी स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। कला के प्रथम दो भेद—(1) उपयोगी कला, तथा (2) ललित कला इन दो नामों से है। उपयोगी कलाओं के 64, 86 और कहीं कहीं 100 तक भेद गिनाए गये हैं।[5] ललित कलाओं के प्रमुख पाँच भेद किये गये हैं—(1) वास्तु (2) मूर्ति (3) रञ्जन एवं चित्र-कला (4) काव्य कला और (5) संगीत कला[6] उपयोगी कलाएँ विशिष्ट कर्म कौशल और सुरुचि से सम्बन्ध रखती हैं; इस लिए वह 'शिल्प' के निकट हैं। ललित कलाओं के पाँच भेदों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठता की दृष्टि से विभाजन हुआ है। प्रथम दो, शिल्प के ही श्रेष्ठतम प्रकार हैं; क्योंकि उनमें अनुभव अभ्यास और हस्तकौशल का बहुत योगदान रहता है। ललित कला के अन्तिम तीन भेद, प्रतिभा तथा कौशल दोनों शक्ति विशेष की अपेक्षा रखते हैं।

'कला' के पश्चात् इस निबन्ध के शीर्षक का दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु, कला का क्षेत्र है। विस्तार; ब्रह्मसृष्टि और मानवीय प्रतिभाजन्य सृष्टि तक व्याप्त है। ब्रह्म सृष्टि से भावाभिव्यक्ति और ज्ञानार्जन के ईश्वरप्रदत्त मूलभूत प्रमुख तीन ही साधन प्राणी को प्राप्त हैं—मन, वाक् और प्राण। इन्हीं 'तीनों' को विभिन्न 'त्रिकों' के द्वारा क्रमशः उपनिषदों में पद-पद पर कहा गया है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि ये ही 'त्रिक' समस्त कलाओं के नैसर्गिक मूलभूत सशक्त माध्यम एवं साधन हैं। यथा—नाट्य कला में अभिनय ही नट और दर्शक के मध्य भावसम्प्रेषण की कड़ी (शृंखला) बनता है। वाचिकअभिनय—'वाक्' के माध्यम से, आंगिक अभिनय—'प्राण' के द्वारा, तथा सात्विक अभिनय—'मन' को साधन बनाकर भाव की विभिन्न छवियों को उपस्थित कर रसाभिव्यक्ति में सहायक होता है। आहार्य—ये तो काल तथा देश की सीमा में ग्रथित युगविशेष या पदार्थविशेष के सूक्ष्म प्रतीक हैं। संगीत कला में—गीत, वाद्य, और नृत्त नृत्य की रसाभिव्यक्ति के मूल माध्यम प्राण, वाक् और मन ही हैं। यूं तो नृत्य में—'प्राण' प्रधान, गान और वादन पक्षों में 'वाक्' के नादात्मक एवं वर्णात्मक दोनों रूपों की प्रधानता रहती है। सभी शाब्दी कलाओं में—वाक्, प्राण, और मन सदा क्रियाशील रहते हैं। पूर्व संस्कारों से अनुप्राणित मानवीय अनुभूति और अभिव्यक्ति के साथ प्रत्येक कला में–इन 'त्रिकों' (वाक्, प्राण, मन) के साथ देश और काल सहज ही गुथे चले आते हैं।

कला के क्षेत्र-विस्तार तथा रसाभिव्यक्ति की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

१. प्रमुख रूप से दो ज्ञानेन्द्रियाँ—कर्ण और चक्षु, सभी कलाओं को दो विशिष्ट वर्गों—'श्रव्य कला' ओर दृश्य कला—में बाँट देती हैं।

२. त्रिकसंघात में किसी एक की प्रधानता एवं क्रमता के भिन्न होने पर कला की क्षेत्रीय सीमाएँ अलग-अलग दृष्टिगत होती हैं। जैसे—वाक्प्रधान काव्यकला, और प्राणप्रधान नृत्य कला।

३. देश तथा काल के आधार पर अचल कलाओं और चल-कलाओं का स्वरूप निर्धारित होता है। यथा काल-प्रधान चलकलाएँ—संगीत, काव्य, नाट्य, नृत्यादि हैं। देश प्रधान अचल कलाएँ—मूर्त्ति, स्थापत्य, चित्र, छाया-चित्र, रञ्जनादि कलाएँ हैं, जो भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखती हैं। उन-उन विभिन्न कलाओं के वाहक माध्यम उपयोग में आने वाली सामग्री एवं ग्राहक इन्द्रियों तथा रस निष्पत्तिप्रक्रिया की विशिष्टताओं के कारण—तत् तत् कलाओं से प्राप्त होने वाली रसानुभूति भी भिन्न होती है।

४. एकल, युगल और सामूहिक संगठनों से भी कला की रसानुभूति पर प्रभाव पड़ता है। वाह्य साधनसामग्री का उपयोग जो कला जितना ही कम करती है उतनी ही वह कला प्रभावशाली होती हैं। संगृहीतसामूहिक कलाओं में तनिक सी असावधानी होने पर रसभंग होने की सम्भावना रहती हैं।

५, कला वस्तुगत है या व्यक्तिगत इसका प्रभाव भी रसानुभूति पर होता है। यथा नाट्यकला में चाक्षुष प्रत्येक और श्रावण प्रत्यक्ष दोनों का प्रत्यक्षीकरण समवेत होता है। आहार्य अपने अस्तित्व से उस प्रत्यक्षीकरण को देश और काल की निश्चित सीमा में बाँध कर रसानुभूति में सहायक होता है। नाट्य जनित या नृत्य-जनित रसानुभूति रञ्जन या चित्रकला अथवा छाया चित्र से भिन्न इस तरह है कि इनमें इन्द्रियजन्य प्रभाव समग्रता से होता है, क्रम में नहीं। वर्ण, वेष, प्रकृति-चित्रण इनके वैशिष्ट्य से रस की अनुभूति या ज्ञान तत्क्षण होता है। फलक पर बने समूचे चित्रका एक-साथ परिचय होता है, उसमें कालक्रमता नहीं है। वर्ण (रंग) का गहरा-हल्कापन, आकृति रेखाओं की विभिन्न छवियाँ आदि आनन्द या रश मं सहायक होतीं हैं; वहाँ श्रव्यता नहीं हैं; फिर भी कालबोध होता है। पर नाट्य या काव्य में काल-क्रम में रसानुभूति या आनन्द का पोषण होता है। यहाँ भाव वैविध्य के दर्शन शब्द रचना, ध्वनि का उतार-चढ़ाव मौन आदि तथा वेष-भूषा, रंग आहार्यादि के आनन्द बोध के लिए कारण होते हैं।

मूर्ति कला में खाल और उभार के माध्यम से शारीरिक सूक्ष्मताओं में सन्तुलन के साथ उसका अंकन अनुपात का पूर्ण निर्वाह होने पर भी आकर्षण हेतु सामान्य शरीरगठन से कुछ अतिरञ्जित होकर ही जब मूर्ति एक विशेष मुद्रा को मुखरित करती है, तभी आनन्द का अतिरेक रसानुभूति में बदल जाता हैं। शारीरिक 'उभार' और 'खाल' को सौन्दर्य प्रदान कर देने वाली छेनी और हथौड़ी ही आनन्द में विभोर कर रस की अनुभूति में सहायक होती है। चित्रकला या रञ्जनकला में रंगों का सुरुचि पूर्ण, प्रसंगानुरूप सामंजस्य ही रसानुभूति में प्रमुख कारण बनता है। स्थापत्य जैसी अचल कालाओं में–प्रयुक्त होने वाली सामग्री की श्रेष्ठता और स्थपति के हस्तकौशल के साथ सुरुचि एवं उपयोगिता की झलक पाकर सदा ही हम उसको सराहते हैं।

निष्कर्ष यह है कि सभी मानवीय कलाओं में उसकी जीवनी शक्ति 'रस' की अनुभूति सदा व्युत्क्रम में हुआ करती हैं। अचल कलाएँ दर्शक को मन्त्रमुग्ध कर मुखर करती हैं तथा चल कलाएँ अपनी रसाभिव्यक्ति के क्षणों में प्रेक्षक या श्रोता को मौन कर देतीं हैं। चल कलाओं का आनन्द हम स्थिर होकर लेते हैं।

सभी अचल कलाकृतियों तक दर्शक को चल कर उसके पास तक जाना होता है, जबकि चल कलाएँ श्रोता के पास चल कर आती हैं। सभी कलाओं में रसानुभूति और रसाभिव्यक्ति तभी सम्भव है, जब वहाँ तटस्थता का भाव हो, अन्यथा वह 'अनुभव' हो जायेगा और वहां आनन्द मात्र न उपलब्ध होकर वह सुख-दुःख के रूप में ग्रहण होगा।

कला का प्रयोजन तथा उसकी सिद्धि आनन्द की उपलब्धि में है। और वह आनन्द है 'स्वचेतना का पदार्थ–चेतना से तादात्म्य हो जाना'। यह व्यक्तिनिष्ठ अवस्था में स्व-संवेद्य है। किन्तु वस्तुनिष्ठ होने पर यह 'पर-संवेद्य' है। कला के द्वारा ब्रह्माण्ड में व्याप्त ब्रह्मानन्द की उपलब्धि ही 'आत्म तत्त्व में परम तत्त्व का दर्शन' है अथवा यूँ कह सकते हैं कि परमतत्त्व, जो आनन्द रूप से ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, उसमें आत्म-तत्त्व का विलय है। यही आनन्द मोक्षावस्था है जो कला का प्रयोजन और उसकी सिद्धि है। इसीलिए ज्ञान या अनुभव की संप्रेषण—पद्धति स्थूल से सूक्ष्म की ओर ही रही है। सब कुछ कलाकार नहीं देता, कुछ श्रोता या दर्शक या पाठक के लिए भी छोड़ देता हैं। कला के परिप्रेक्ष्य में 'रस' की अनुमति में दृष्टिगोचर होने वाले भिन्न-भिन्न स्तरों का भी रही रहस्य हैं।

टिप्पणियाँ

1. सं० र० 3/5
2. भा० सं० कोष खण्ड 2 पृ० 162
3. शब्दकल्पद्रुमः भाग 3 पृ० 258
4. सुमित्रानन्दन पंत–काव्य कुसुमाञ्जलि पृ० 51
5. कामसूत्र, शुक्रनीति, ललितविस्तर, क्षेमेन्द्र आदि
6. नन्ददुलारे वाजपेयी—ललित कलाओं का स्वरूप पृ० ९०।

काव्यांजलि

शिवसेवक त्रिपाठी

पूज्यवर बंगाली बाबा के प्रति

एक व्रती तुम एक तपस्वी

मौन मनीषी, निस्पृह, अकाम,
निश्छल, निर्मल लो प्रणाम।

एक व्रती तुम एक तपस्वी,
सौम्य, शान्त शुचि संत मनस्वी,
करूण-हृदय, करूणामय, लो प्रणाम !
निर्मल, निश्छल, लो प्रणाम ॥

सरसनेह प्रिय, पूरित उर,
शुभाशीष से पुलकित पुर,
सतत साधना-रत, लो प्रणाम।
निर्मल, निश्छल, लो प्रणाम ॥

संगीत-सुधा से ओत् प्रोत्,
पढ़ते पावन स्तुति-स्त्रोत्,
प्रिय, परम तपस्वी, त्यागी प्रणाम।
निर्मल, निश्छल, लो प्रणाम ॥

श्रुति-साधक, संगीत-गीत,
ब्रह्मनाद मुद - मंगल - पुनीत,
प्रणव-उपासक ! योगी ! प्रणाम।
निर्मल, निश्छल लो प्रणाम ॥

सौम्य - शान्त - सन्यस्थ - चित्त
क्षमा - दया सबके निमित्त,
द्युतिमय छवि-भावाभिराम,
निर्मल निश्छल लो प्रणाम ॥

'नादार्चन' वार्षिकी के लोकार्पण-अवसर पर

नादार्चनम्

नाद ब्रह्म - प्रिय - ब्रह्मनाद
सामवेद - ऋचा - ज्ञान,
स्वर - संगीत - मधुर - गीत,
साध्य - साधना - सुध्यान।

तीर - तीर सरित् - नीर,
नीर - नीर तरङ्ग - ताल,
मेघ - मेघ - मन्द्र - रव,
नाद-अर्चना उदधि-उत्ताल।

पवन - प्रवाह - मन्द - मन्द,
छन्द - छन्द गीत - लय,
अनहद - स्वर - ब्रह्मनाद,
आनन्द -गान, नभ - निलय।

दिव्य ज्ञान, मौन ध्यान,
गूँज रहा प्रणव - प्राण।
सौम्य - स्वर - तरंग में,
निराकार ब्रह्म - ज्ञान।

सु - आरती - सुभारती !
ब्रह्मवेद - वन्दितम्।
नादार्चनम् करोमि नाथ !
संगीत - गीत - समन्वितम्।

□

जिन्हें यहाँ (डीरेका) के श्रमश्लथ लोगों ने अपनी सहजता और सरलता के भावोद्रेक में 'बंगाली बाबा' की संज्ञा प्रदान कर दी। आत्मीयता के इस सरल-सहज प्रवाह में वारिशाल में जन्मे 'श्री शिवनाथ बनर्जी' कब खो गये और बंगाली बाबा कब प्रकट हुए यह बताना तो कठिन है, किन्तु, हमारे सामने बाबा की जो छवि उभरी वह तो विभिन्न भाषाओं, प्रदेशों, जातियों, सम्प्रदायों की सीमाओं से परे अनेकता में एकता के उस अमूर्त सूत्र की थी जिसकी खोज में आज के नेताओं-राजनेताओं को विविध प्राणायम करने पड़ रहे हैं। बंगाली बाबा स्नेह, प्रेम, करुणा, दया-क्षमा के ऐसे महासागर बन चुके थे, जिसमें गोता लगाकर मनुष्य देश-काल तथा परिवेश की परिधि से बाहर निकलकर अवसादहीन, स्फूर्ति का सृजन-संगीत सुनने लगता था।

आलोक प्रियदर्शी

('नादार्चन' संगीत वार्षिकी प्रवेशाङ्क–1991)

हमारे लेखक-रचनाकार

—डॉ० अनिल बिहारी ब्यौहार
प्रवक्ता, संगीतशास्त्र विभाग
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय
खैरागढ़, राजनाँद गाँव, 491881

—डॉ० आर० व्ही० कविमण्डन
डी. 29/11, मुंशीघाट, वाराणसी, 221001

—डॉ० आदिनाथ उपाध्याय
374 ए, डी. रे. का.
वाराणसी–221004

—डॉ० श्रीमती कमल जैन
बंगला नं०–37
डी. रे. का. वाराणसी–221004

—श्री गजेन्द्र नारायण सिंह
सचिव बिहार संगीत नाटक अकादमी
11बी श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001

—डॉ० जयचन्द्र शर्मा
निदेशक, श्री संगीत भारती
रानी बाजार, बीकानेर–333001

—स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति
पुत्र–श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
सुसुवाही कालोनी, सुन्दरपुर, वाराणसी–221005

—डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित,
एच 6, जोधपुर कालोनी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

—डॉ० (कु०) प्रेमलता शर्मा
आम्नाय, 209/1, नन्दनगर कालोनी
करौंदी, वाराणसी–221005

—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा
न्यु कालोनी, डाक बंगला रोड
बेतिया, प० चम्पारन–845438

—डॉ० राय आनन्द कृष्ण
सीता निवास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

—डॉ विमला मुसलगाँवकर
13, दीनदयाल नगर
दुर्गाकुण्ड, वाराणसी–221010

—श्री शिवसेवक त्रिपाठी
आवास सं०–691 ए
डी. रे का. वाराणसी–221004

—डॉ० सुभद्रा चौधरी
विभागाध्यक्षा, संगीतशास्त्र विभाग
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़
राजनाँद गाँव–491881

शास्त्रीय संगीत से सम्बद्ध कुछ शब्दावलियाँ

अताई : संगीत के शास्त्रीय ज्ञान से शून्य ।

अदा : भावपूर्ण मुद्रा ।

अनाहत नाद : बिना आघात के जन्यनाद, साहित्य में 'अनहद' के रूप सें भी प्रयुक्त ।

अल्पत्व : राग की अवतारणा में स्वरों का अल्प प्रयोग ।

अवरोह : स्वरों का अवरोहण अथवा नीचे जाने वाला क्रम ।

अष्टपदी : जयदेव की कृति ।

अन्तरा : गीत (वन्दिश) का दूसरा खण्ड ।

अंश : राग का प्रमुख स्वर ।

आदिताल : दाक्षिणात्य त्रिपुट ताल का एक भेद, उत्तरीभारत के त्रिताल जैसा

आरोह : स्वरों का ऊपर जाने वाला क्रम ।

आलाप : धीमी गति से स्वर-विस्तार ।

आविर्भाव : तिरोभाव के पश्चात राग का मूल स्वरूप स्पष्ट करना ।

आश्रयराग : जन्य राग, मेल राग

उत्तरांग : सप्तक का उत्तरार्ध ।

उद्गाता : सामवेद का मुख्य गायक ।

उपज : कल्पना-भूत स्वर या स्वर-समुह ।

कण : स्वर का अल्प स्पर्श ।

कलावंत : ध्रुपद गायक (मध्यकालीन संज्ञा)

कृति : कर्नाटक संगीत का एक प्रमुख गीत-प्रकार ।

कम्पन : गमक का एक प्रकार ।

काकु-स्वर-प्रयोग : प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से एक ही स्वर का भिन्न-भिन्न प्रकार से लगाव ।

कायदा : ठेके पर आधारित विशिष्ट बोल-रचना ।

कुतप : वाद्यवृन्द ।

खटका : एक गमक-प्रकार ।

ख़याल : हमारे वर्तमान शास्त्रीय संगीत का प्रमुख रागदारी-प्रकार

गतभाव : कथक नृत्य का एक अंग ।

गमक : स्वर का कम्पयुक्त प्रयोग ।

गायिकी : 'नायिकी' को अलंकृत करके गाना, इसी के विकास-क्रम में कलाकर की 'विशिष्ट शैली' का जन्म होता है ।

ग्रह : जाति एवं राग का आरम्भिक स्वर ।

चतुरस्र : ताल-जाति का मुख्य प्रकार ।

छायालग राग : वह राग जिसपर अन्य राग की छाया हो ।

जवारी खोलना : वाद्य की गूँज बढ़ाने की क्रिया करना ।

जाति : 'राग' की पूर्ववर्ती विधा ।

ततकार : नृत्य के बोल ।

तिरोभाव : राग का स्वरूप छिपाना, वैचित्र्य पैदा करने के लिए रागदारी में किया जाता है ।

तौर्यत्रिक : संगीत, गीत, वाद्य तथा नृत्य का समुच्चय ।

त्र्यस्र : ताल-जाति का एक प्रकार ।

दशविध रागलक्षण : ग्रह-अंश,
तार-मन्द्र
न्यास-अपन्यास
अल्पत्व-बहुत्व
षाडव-औडव ।

नायिकी : गुरु-परम्परा से सीखी हुई चीज को यथावत् प्रस्तुत करना ।

नृत्त : अभिनय रहित अंग-विक्षेप ।

नृत्य : अभिनय सहित अंग-विक्षेप ।

नृत्य की मुख्य शैलियाँ : भरतनाट्यम्-तमिलनाडू, कथकली केरल प्रदेश का, कथक-उत्तर भारत का, इसे नटवरी नृत्य भी कहते हैं; मणिपुरी-मणिपुर क्षेत्र का ।

नृत्य (कथक) के घराने : लखनऊ, जयपुर तथा बनारस ।

पकड़ : राग-वाची स्वर-समूह ।

पढ़न्त : बोलों को मुख से बोलने की क्रिया

परन : मृदंग या तबले पर बजाये जाने वाले बोल समूह ।

पूर्वाङ्ग : सप्तक का पूर्वार्ध

बहुत्व : रागदारी में स्वर-विशेष का बहुल प्रयोग !

बाज : वादन शैली ।

मसीतखानीगत : विलंबित गत

रजाखानीगत : द्रुत लय की गत ।

लग्गी : तबले के बोल-समूह का एक प्रकार।

लड़ी : बोलों-लग्गियों की शृंखला ।

लहरा : आवर्तन तथा लयदर्शक गत ।

लक्ष्य : प्रयोगगत ।

लक्षण : शास्त्र-सिद्धान्तगत ।

विष्णुपद : ध्रुवपद शैली में गाया जाने वाला एक गीत प्रकार जिसका मूल सम्बन्ध मंदिर-परंपरा से रहा है ।

षड्जपंचम भाव : सा और प के बीच का संवाद-सम्बन्ध जिसमें तेरह (१३) श्रुतियों का अन्तराल होता है ।

षड्जमध्यम भाव : सा और म के बीच का संवाद-सम्बन्ध जिसमें नौ (9) श्रुतियों का अन्तराल होता है ।

सादरा : ध्रुवपद शैली में गाया जाने वाला एक गीत-प्रकार

साम : गेय मन्त्र, इसी से सामवेद ।

संकीर्ण राग : अनेक रागों की छाया वाले राग; मिश्र पीलू, मिश्र खमाज आदि; इनका प्रयोग अधिकतर ठुमरियों में होता है ।

सप्तक : सात स्वरों का समूह (सा से नि तक) ।

स्थायी : गीत (बन्दिश) का पहला खण्ड ।

'नादार्चन' परिवार की सानुताप श्रद्धा-स्मरणांजलि

भारतीय संगीत के उन पुरोधा-द्वय को,

जो अब हमारे बीच नहीं रहे

पं० मल्लिकार्जुन मंसूर
(प्रयाण—दि० 12 सितंबर 1992)

ए
वं

पं० कुमार गंधर्व
(प्रयाण—दि० 12 जनवरी 1992)

शिव-काली मन्दिर की सांस्कृतिक गतिविधियाँ

शारदीय नवरात्र का सांगीतिक कार्यक्रम

शिव-काली मन्दिर संगीत समिति के माध्यम से डीरेका में जो सांस्कृतिक नवचेतना जगी है और लोगों में शास्त्रीय संगीत के प्रति जो रुझान आयी है उसका बहुत बड़ा श्रेय अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा को जाता है। ई० 1987 की शारदीय नवरात्र की अष्टमी को इसी मन्दिर पर जब सुर-ताल और आवाज के धनी इस क्षेत्र के एक लोकप्रिय गायक श्री विजयी सिंह का गायन चल रहा था तभी बाबा को भीतर से कुछ प्रेरणा जगी और गायन समाप्त होते ही समीप में खड़े संगीत भक्त श्री कमला सिंह को यह आदेश दिया कि अब से इस तरह के कार्यक्रम प्रत्येक वर्ष होने चाहिए और तभी से श्री लक्षू महाराज की अध्यक्षता में प्रत्येक शारदीय नवरात्र में शास्त्रीय संगीत का यह द्विदिवसीय कार्यक्रम निरन्तर सफलता पूर्वक होता चला आ रहा है।

1988 के कार्यक्रम

गायन—श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—सुश्री दीप्ति बनर्जी
नृत्य—श्री रवि शंकर मिश्र तथा श्री सामता मिश्र
स्वतन्त्र तबला वादन—श्री लक्षू महाराज

1989 के कार्यक्रम

गायन—श्री अजीत भट्टाचार्य
सितार—सुश्री तृप्ति बनर्जी
गायन—श्री बादल महाराज
वायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
गायन—श्री छन्नू लाल मिश्र
कथकनृत्य—सुश्री उर्मिला शर्मा
तबला संगतकार—पं० लक्षू महाराज, श्री सत्यनारायण सिंह
हारमोनियम—श्री परशुराम पाण्डेय, श्री विनोद लैंले
सारंगी—श्री गणेशजी

1990 के कार्यक्रम

शहनाई—नैयर खाँ (सुपुत्र विस्मिल्लाह खाँ)
गायन—प. छन्नूलाल मिश्र
बायलिन—श्री रामू प्रसाद शास्त्री
कथक नृत्य—श्री रविशंकर मिश्र, श्री सामता मिश्र

गायन—श्री प्रदीप कुमार, श्री सत्य नारायण सिंह
सितार—सुश्री रक्तिमा सरकार
कथक नृत्य—सुश्री सोनाली मुखर्जी
स्वतन्त्र तबला वादन—पं. लक्षू महाराज
तबला संगतकार—पं. ईश्वरलाल मिश्र, श्री कुवेर मिश्र, श्री किशोर मिश्र
हारमोनियम—श्री ध्रुवजी
सारंगी—श्री गणेश जी, श्री सन्तोषजी

1991 के कार्यक्रम

शिव-काली मन्दिर के इस प्रांगण में पिछले वर्षो की भाँति वर्ष 1991 में भी तबला-सम्राट श्री लक्षू महाराज की अध्यक्षता में द्विदिवसीय शास्त्रीय संगीत का समारोह सम्पन्न हुआ। इस वर्ष के आयोजन की उल्लेखनीय बात यह थी कि संगीत की एक वार्षिक पत्रिका के प्रकाशन के साथ डीरेका (डीजल रेल-ईजन कारखाना) की सांस्कृतिक गतिविधियों में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ।

द्विदिवसीय संगीत-कार्यक्रम दि० 16 तथा 17 अक्टूबर 1991 : प्रथम दिवस की संगीत-निशा का शुभारम्भ श्रीमती अनुराधा श्रीवास्तव ने दीप प्रज्वलित करके किया। कार्यक्रम के आरम्भ में श्री रमाशंकर तथा साथियों ने शहनाई पर राग बागेश्री एवं राग मिश्र पीलू प्रस्तुत किया। तत्पश्चात डॉ० रक्तिमा सरकार ने सितार पर राग पूरियाकल्याण तथा डॉ० ऋचा जौहरी ने गायन प्रस्तुत करते हुए राग मधुकौंस, मिश्रपीलू तथा भजन की अवतारणा की। कार्यक्रम की प्रभावशाली कड़ी के रूप मं डॉ० रामू शास्त्री-वायलिन एवं श्री अमरनाथ मिश्र-सितार, की युगलबन्दी थी जिस पर कलाकार द्वय ने राग किरवानी प्रस्तुत किया। इस निशा की अन्तिम प्रस्तुति के रूप में श्री माता प्रसाद एवं श्री रविशंकर के युगल कथक नृत्य का दर्शकों ने भरपूर आनन्द उठाया। संगीत की द्वितीय निशा का शुभारम्भ डा० विद्या निवास मिश्र (कुलपति सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) ने दीप प्रज्वलित करके किया। आज की संगीत प्रस्तुति का प्रथम आकर्षण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ द्वारा स्थापित मैहर वाद्यवृन्द था जिसमें श्री गिरिधर लाल शर्मा सहित 13 कलाकारों ने समवेत रूप से भाग लिया। इस कार्यक्रम के माध्यम से श्रोताओं को एक ओर जहाँ नलतरंग तथा चेलो जैसे वाद्यों का प्रभावी परिचय प्राप्त हुआ वहीं संगीत-रचनाओं की सप्तरंगी प्रस्तुति (राग यमन, केदार, बिहारी, मेघ, सिन्दूरा, बँगला कीर्तन तथा मिश्र किरवानी में सात रचनाओं) से सम्पूर्ण वातावरण श्रोताओं की आह-वाह से गूँज उठा। तत्पश्चात श्रीमती मंगला तिवारी ने राग जोग कौंस में ख्याल और तदुपरान्त भजत प्रस्तुत किया। द्वितीय निशा का अन्तिम कार्यक्रम श्री बिश्वजीत राय चौधरी का सरोद-वादन था। श्री राय चौधरी ने मिश्र किरवानी के अतिरिक्त कुछ अन्य रोचक गितों की भी सशक्त अवतारणा की। आप के साथ तबले पर श्री लक्षू महाराज ने अद्वितीय संगत की। यह प्रस्तुति इतनी प्रभावशाली थी कि अरूणोदय-काल तक भी श्रोता संगीत का आनन्द लेते रहे और कलाकारों से 'एक बार पुनः, एक बार पुनः' का अनुरोध करते रहे। शारदीय नवरात्र के इस संगीत-कार्यक्रम में श्री लक्षू महाराज के अतिरिक्त तबले पर श्री ईश्वर लाल मिश्र, श्री कुमार लाल मिश्र, श्री रघुनाथ जी, श्री किशोर लाल मिश्र, श्री बिनोद लैले तथा हारमोनियम पर ध्रुव जी और सारंगी पर श्री बच्चालाल मिश्र एवं सन्तोष मिश्र ने संगत की। श्री ध्रुवकुमार मालवीय ने कार्यक्रम का सफल संचालन किया। श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह तथा श्री कमला सिंह का व्यवस्था का नेतृत्व सराहनीय था। पण्डाल एवं मंच-सज्जा में श्री बिहारी (भागीरथी टेन्ट हाउस) ने भी अच्छी कार्य कुशलता का परिचय दिया।

'नादार्चन' संगीतवार्षिकी का विमोचन समारोह

दिनांक 17 अक्टूबर 1991 को, संगीत निशा के पूर्वार्ध में आयोजित इस समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. विद्या निवास मिश्र थे तथा इसकी अध्यक्षता श्री प्रताप श्रीवास्तव ने की। आरम्भ में संस्था की ओर से मुख्य अतिथि तथा मंच पर विराजमान विशिष्ट अतिथियों का अंगवस्त्रम् एवं पुष्प-माला से सम्मान किया गया। तत्पश्चात अतिथियों का भावविह्वल स्वागत करते हुए 'नादार्चन' के सम्पादक डॉ. आदिनाथ उपाध्याय ने पत्रिका का विमोचन सम्पन्न करने के लिए मुख्य अतिथि से अनुरोध किया। विमोचन के पश्चात कार्यक्रम का संचालन करते हुए सम्पादक ने सर्वप्रथम पत्रिका के उद्देश्यों एवं उपलब्धियों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला। इस अवसर पर उद्घाटन-भाषण में डी. रे. का. के महाप्रबन्धक श्री रोमेश सेठी ने इस प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियों को बहुमूल्य उपलब्धि बताते हुए भविष्य में इसके निर्बाध रूप से चलते रहने की शुभकामना व्यक्त की। दर्शन एवं साहित्य के मूर्धन्य विद्वान डॉ. गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर ने शिव-काली मन्दिर के प्रांगण में आयोजित इस सम्पूर्ण समारोह को 'यज्ञ' की संज्ञा देते हुए आयोजन की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा आयोजकों को साधुवाद दिया। देश की अग्रणी संगीत-चिन्तिका डा. प्रेमलता शर्मा ने संगीत के प्रयोग-पक्ष के साथ उसके सहगामी शास्त्र-पक्ष एव दोनों के समन्वय पर बल देते हुए 'नादार्चन' के प्रकाशन की प्रासंगिकता पर प्रकाश डाला तथा इस आरम्भ को संगीत के क्षेत्र में एक 'शुभ लक्षण' बताया। समारोह के समापन-भाषण में मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए युग-द्रष्टा डॉ. विद्या निवास मिश्र ने एक तकनीकी संस्थान में संगीत-पमिका के प्रकाशन सहित सम्पूर्ण सांस्कृतिक क्रिया-कलाप को एक 'सुखद आश्चर्य' कहा और इसे सभी के जिए अनुकरणीय बताते हुए इसके सहभागियों को हार्दिक धन्यवाद दिया। इस अवसर पर डॉ. विमला मुसलगाँव कर, डॉ. ऋत्विक सान्याल आदि स्थानीय संगीत-चिन्तकों के अतिरिक्त मद्रास विश्वविद्यालय के संगीत-विद्वान डॉ. रामनाथन् भी उपस्थित थे।

डी. रे. का. के इतिहास में यह पहला अवसर था जब एक ही मंच पर संगीत के प्रयोक्ता, शास्त्र-वेत्ता एवं साहित्य मर्मज्ञ-यह सभी एक साथ विराजमान थे। इस दृश्य को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वीणा-पुस्तक धारिणी माँ सरस्वती अपने सम्पूर्ण स्वरूप में प्रकट हो गयी हों।

अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा को पुण्य स्मृति

अनन्त श्री पू० बंगाली बाबा की पुण्य स्मृति में इस वर्ष माघ शुक्लपक्ष द्वादशी, दि० 15 फरवरी 1992 को शिव-काली मन्दिर समिति के तत्वावधान में मन्दिर के प्राङ्गण में भक्ति-भोज का आयोजन किया गया। इस अवसर पर डी० रे० का० परिसर के अलावा काशी तथा बाहर से आये श्रद्धालुजनों ने पारम्परिक विधि,विधान के साथ प्रसाद ग्रहण किया। भक्तजनों द्वारा दुर्गा-पाठ के साथ-साथ भजन-कीर्तन तथा रामायण का कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया।

'सुप्रभातम्' कार्यक्रम का शुभारम्भ

इस वर्ष दि० 26-5-92 को शिवकाली मन्दिर में 'सुप्रभातम्' कार्यक्रम का शुभारम्भ हुआ। कार्यक्रम का उद्घाटन संस्कृत एवं दर्शन के मूर्धन्य विद्वान् डॉ० गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर के कर-कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मुख्य अतिथि पद से बोलते हुए डॉ० मुसलगाँवकर ने शास्त्र एवं संस्कृत के

महत्त्व पर प्रकाश डाला। आपके सारगर्भित एवं ओजस्वी प्रवचन से श्रोता अध्यात्म एवं भक्ति-भाव से अभिभूत हो उठे। अन्त में श्रीमती ऋचा जौहरी ने मधुर भक्ति-संगीत प्रस्तुत किया। आपके साथ देश के प्रसिद्ध तबलावादक श्री ईश्वरलाल मिश्र ने प्रभावशाली संगत की तथा सारंगी पर श्री गणेश महाराज ने साथ दिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ० आदिनाथ उपाध्याय एवं श्री ध्रुवकुमार मालवीय ने किया। संयोजन में प्रमुख भूमिका श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह तथा श्री कमला सिंह की थी।

उल्लेखनीय है कि शिव-काली मन्दिर की उपलब्धियों को स्थानीय समाचार पत्रों ने भी समय-समय पर प्रकाशित किया और सांस्कृतिक-चेतना के नव-जागरण में अमूल्य योगदान का उदाहरण प्रस्तुत किया।

•

संगीत की बारीकियां को समझे बिना हम इसका पूरा आनन्द नहीं उठा पाते। इसलिए क्रिया-पक्ष के साथ-साथ संगीत के सिद्धान्त-पक्ष का भी सम्यक् शिक्षण आवश्यक है।

—लक्षू महाराज
अक्ष्यक्ष, शिव-काली मन्दिर संगीत समिति।

आयोजकों-संयोजकों को चाहिए कि वे संगीत-सम्मेलनों में नवोदित कलाकारों को भी शामिल कर उनका उत्साहवर्धन करें।

—प्रताप श्रीवास्तव
संरक्षक, शिव-काली मन्दिर संगीत समिति।

मुगल बादशाह औरंगजेब का संगीत-द्रोह जगत्-प्रसिद्ध रहा है किन्तु नवीनतम अनुसन्धानों से ज्ञात होता है कि औरंगजेब एक निष्णात वीणावादक था। उसके शासन-काल में स्वयं उसके कृपा-पात्र फ़कीरुल्लाह ने 'मानसिंह और मानकुतूहल' संगीत-ग्रन्थ की रचना की तथा इसी युग में पं० भावभट्ट ने संगीत के 18 ग्रन्थों की रचना की जो संगीत-जगत् का एक कीर्तिमान है। इतना ही नहीं भावभट्ट जैसे विलक्षण संगीत-विद्वान् को वाग्गेयकार, संगीतराय, अनुष्टुप्चक्रवर्ती, सकलकलावन्त, वर्तमान-प्रवर्तक, ब्रह्मर्षि आदि उपाधियाँ प्राप्त थीं और इनमें से कई-एक तो स्वयं औरंगजेब के राज्याश्रय द्वारा ही प्रदत्त थी।

—सम्पादक

'नादार्चन-संगीत वार्षिकी'-1991 की विषय वस्तु

1. आशीर्वाद एवं प्रेरणाएँ
2. प्राक्कथन
3. मौन साधना का एक मुखर स्वर : डीरेका के बंगाली बाबा —श्री आलोक प्रियदर्शी
4. मानव-जीवन का परम इष्ट : नाद-साधना —श्री विजय कृष्ण जोशी
5. हमें देखना है कि····· —डॉ० प्रदीप कुमार दीक्षित 'नेहरंग'
6. संगीत से आनन्द की अभिवृद्धि —श्री अखौरी नगेन्द्र नारायण सिन्हा 'नन्दन जी'
7. सम्पूर्ण जीवन-दर्शन का प्रतीक हमारा शास्त्रीय संगीत —डॉ० ऋत्विक सान्याल
8. भारतीय संगीत कला से पुरुषार्थों की प्राप्ति —डॉ० बिमला मुसलगाँवकर
9. संगीत के क्षेत्र में व्यक्तिवादी वर्चस्व की प्रवृत्ति : एक घातक बिडम्बना —स्व० जयन्त कृष्णमूर्ति
10. संगीत में शब्द और स्वर का समन्वय —श्रीमती गिरिजा देवी
11. भारतीय संगीत में 'घराना' की अवधारणा —डॉ० आदिनाथ उपाध्याय
12. भारतीय शास्त्रीय संगीत में ताल का महत्व तथा उसका गणितीय विश्लेषण —डॉ० केदारनाथ भौमिक
13. भारतीय संगीत में स्वर-प्रतिपादन : एक बिहंगम दृष्टि —डॉ० कृष्णनाथ ओझा
14. शास्त्रीय संगीत से सम्बन्द्ध कुछ शब्दावलियाँ
15. शिवकाली मन्दिर का शारदीय नवरात्र का सांगीतिक कार्यक्रम
16. एक सुमन—शुभाशीष की याचना में —श्री शिव सेवक त्रिपाठी

□

'नादार्चन-प्रवेशांक' प्रासंगिकी : शुभकामनाएँ-अभिव्यक्ति-उद्गार

(सम्पादक को सम्बोधित)

यह बड़े हर्ष का विषय है कि शारदीय नवरात्र के पवित्र पावन पर्व पर आपने संगीत की भव्य स्मारिका 'नादार्चन' के प्रकाशन का संकल्प लिया है। मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश्य एवं आदर्श को ध्यान में रखकर इस संगीत-पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है, वह सार्थक होगा।

—डॉ० विद्या निवास मिश्र,
वाराणसी।

भारतीय संगीत के प्रयोग-पक्ष के साथ-साथ उसके चिन्तन-पक्ष का भी अनुशीलन आवश्यक है। तभी पूर्णांग अनुशीलन संभव है।....इस परिप्रेक्ष्य में शिवकाली मन्दिर संगीत समिति का यह प्रयास सराहनीय है।

—डॉ० प्रेमलता शर्मा,
वाराणसी।

प्राचीन काल से ही काशी नगरी संगीत एवं संस्कृति का केन्द्र रही है। यह नगरी आज भी उच्च-कोटि के संगीतज्ञों, कलाकारों एवं शास्त्रज्ञों से सुशोभित है। संगीत के क्षेत्र में परिपूर्णता हेतु काशी में एक संगीतमय प्रकाशन की आवश्यकता थी।....काशी की संगीत-परम्परा को और सुदृढ बनाने में 'नादार्चन' का प्रयास अति सफल रहे, ऐसी मेरी शुभ कामना है।

—डॉ० एन० राजम,
वाराणसी।

श्री शिव काली मन्दिर संगीत समिति द्वारा आयोजित संगीत सम्मेलन तथा उसके द्वारा प्रकाशित संगीत-पत्रिका 'नादार्चन' की सफलता के लिए मैं कामना करता हूँ।....मुझे विश्वास है कि नयी पीढ़ी के लिए यह प्रयास सांस्कृतिक एवं रचनात्मक गतिविधियों का एक बहुमूल्य स्रोत बनेगा।

—श्री रोमेश चन्द्र सेठी,
वाराणसी।

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का प्रवेशाङ्क प्राप्त हुआ। पत्रिका का गेट-अप, छपाई आदि सभी उत्कृष्ट एवं नयनाभिराम है। सामग्री भी उपयोगी है।....आशा है संगीत जगत् के लिए यह पत्रिका काफी लाभ-दायक सिद्ध होगी।

—संपादक 'संगीत' मासिक,
हाथरस।

'नादार्चन' के अन्तर्गत विविध कोटि के निबन्धों को पढ़कर ऐसा अनुभव हुआ कि संगीत, संस्कृत एवं दर्शन के क्षेत्र में काशी नगरी आज भी अग्रणी है।

—डा० ए० वी० दोषी,
राजकोट।

पत्रिका के सभी लेख विद्वत्तापूर्ण तथा संगीत-जगत् के लिए उपयोगी हैं। वर्तमान युग में ऐसी पत्रिका की नितान्त आवश्यकता थी।

—डॉ० जयचन्द्र शर्मा,
बीकानेर।

पत्रिका आकर्षक लगी। कुछ ऐसे लेख हैं जों बिलकुल नयी और रोचक बात कह रहे हैं। आशा है 'नादार्चन' के माध्यम से संगीत के ऐसे और भी नवोन्मेष आप प्रकाशित करते रहेंगे।

—डॉ० मुकुन्द लाठ,
जयपुर।

पत्रिका सांगोपाङ्ग देखी, सम्पादकीय सहित सभी लेख। सात्विकता की सुगन्ध, आध्यात्मिकता का आनन्द-आलोक। नादार्चन संगीत वार्षिकी के माध्यम से संगीत-सेवा का आपका यह प्रयास सफल रहे यही कामना है।

—प्रो० रवीन्द्रनाथ ओझा,
बेतिया।

नादार्चन का प्रवेशाङ्क अतीव आकर्षक लगा। पत्रिका का गेट-अप सुरुचिपूर्ण है। निबन्धों का चयन आदि भी संतोषजनक है।....पत्रिका के उत्तरोत्तर उत्कर्ष की कामना करती हूँ।

—श्रीमती उषा के० त्रिवेदी,
अहमदाबाद।

पत्रिका बहुत सुन्दर है, लेखों का चयन भी बहुत सूझ-बूझ के साथ किया गया है। आपका संपादन दायित्व-निर्वाह अनुकरणीय है।

—श्री ओम प्रकाश चौरसिया,
भोपाल।

नादार्चन के प्रथम अङ्क की प्रस्तुति एक सफल-सात्विक-सांगीतिक प्रयास रहा; स्तरीय और श्लाघनीय भी। उसके भावी अंक भी उदात्त-उन्नत होंगे ऐसी आशा है।

—श्री शिवसेवक त्रिपाठी
वाराणसी।

●

वर्ष 1991 के कार्यक्रमों की कुछ झलकियाँ

सांस्कृतिक-समारोह का उद्घाटन, दीप प्रज्ज्वलित करते हुए 'नादार्चन-प्रवेशाङ्क' विमोचन के मुख्य अतिथि डॉ० विद्यानिवास मिश्र

मुख्य अतिथि का पुष्प-माला से स्वागत करते हुए समिति के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता श्री शिवेन्द्र प्रताप सिंह

'नादार्चन' संगीत वार्षिकी का विमोचन करते हुए वाग्देवी के वरद वत्स–डॉ० विद्यानिवास मिश्र और उन्हें नतमस्तक साधुवाद देते हुए नादार्चन के सम्पादक—डॉ० आदिनाथ उपाध्याय

सरोद-वादन प्रस्तुत करते हुए श्री विश्वजीत राय चौधरी, तबले पर साथ दे रहे हैं—
श्री लक्षू महाराज

'1991' का एक विलक्षण सांगीतिक नवोन्मेष

मैहर वाद्यवृन्द (अलाउद्दीन खाँ द्वारा स्थापित) की सप्तरंगी प्रस्तुति
जिसमें श्री गिरिधर लाल शर्मा सहित 13 कलाकारों ने समवेत रूप से भाग लिया ।

With Best Compliments From :–

Cable : LOHAGOODS

Phone : 20–7251
20–2870

Jalan Engineering

Works : Ichapur, Kalitala (Santragachi)

HOWRAH–4

With Best Compliments From :—

SD Technical Services [P.] Ltd.

&

Engineering Devices & Controls (P.) Ltd.

Engineers • Precision Tools Dies • Instrument Makers • Manufacturers of Specialised Engineering Products

B-6 Mayapuri Industrial Area
Phase-I, New Delhi

5, Bhagat Singh Marg,
New Delhi-110 001

Telex :	Phone :	Gram :
031-4682 EDCO In	592847	IMPSUL
	592814	PANTECKNO

For

P. M. T. I. I. T. Polytechnic

HIGH SCHOOL—INTER (साईन्स, आर्ट, कामर्स)

JOIN

कृष्णा कोचिंग इन्स्टीट्यूट

वाराणसी—(1) C 27/143 A राम कटोरा फोन नं० ४६५७३
(2) राम कटोरा रोड (टुल्लु फैक्ट्री के बगल में) फोन नं० ४४९४१
इलाहाबाद—३० मोतीलाल नेहरू रोड, फोन नं० ६००१२१

ALSO AT : Lucknow, Kanpur, Meerut, Agra, Gorakhpur, Bareily, Moradabad, Indore, Gwalior, Bhopal, Dehradun, Jabalpur.

With Best Compliments From ESTD. : 1990

Institute Of Professional Education

A Reputed Coaching Institute for
A. M. I. E., GRAD IETE, PMT, IIT, Inter, High Schoo
And Other Competitive Examinations
Get Top Quality Preparation For the Examination You'lll Ever Take.

4/2 Tulsi Manas Mandir Colony, Durgakund
VARANASI–5

With Best Compliments From

UPTRON

ACL

ACADEMY OF COMPUTER LEARNING

LIVE ABOVE ALL THINGS SIMPLY DO NOT EXIST

We at UPTRON not only make GIANTS – The Computers
but also produce Professionals to
TAME the GIANTS ;

So, why not join UPTRON – ACL

The ACADEMY of COMPUTER LEARNING
For the better future of yours
Become an XL professional at Academy
availing our ETS and MTS facilities.

GO FOR THE BEST YOU CAN GET

VARANASI CENTRE :

5, SANT RAGHUBAR NAGAR COLONY, MAHMOORGANJ ROAD,

VARANASI,

Ph : 56638.

With Best Compliments From

JK

जे० के० पेपर मिल्स

जेके कापीयर और चान्सलर बाण्ड

जेके बाण्ड और एयर मेल पेपर

जेके मैगनम पेपर और बोईस

अधिकृत वितरक

बीरेन्द्र शंकर उमाशंकर

नीचीबाग, वाराणसी २२१००१

फोन नं० ३३३५०३

With Best Compliments From

Phone : 42673

BANARAS ENGINEERING COMPANY

S/10/8-1, MAQBOOL ALAM ROAD, CHOWKAGHAT, VARANASI-221002

Railway Approved – Manufacturer of Heavy Duty Blower, Air Filters, Air Reservar and Lube Oil Strainer Element.

With Best Compliments from :—

Shop : 321453
Resi. : 312197

Kumar & Co.

Manufacturers & Exporters of :

ALL KINDS OF DRESS MATERIALS,
SALWAR SUIET, SKIRT TOP and ALL TYPE
OF SAREES ALSO

1012, BISHWANATH LANE
VARANASI-221001 (U.P.) INDIA

K. BHATTACHARYA
(PROPRIETOR)

With Best Compliments from :—

Savita Engineering Company

Gonsulting Engineers, Architects
and
Valuers, Consultants in Engineering
Industries.

Gurubagh
Varanasi

Big Opportunity

YOU KNOW WHAT IT IS

When it Comes to taking up a competitive examination to Pre-Medical Test,
Indian Institute of Technology, Bank P. O., I. A. S. and many others.

Get Details

At the Office of SACHDEVA NEW P. T. COLLEGE
Address :—C-27/273. 12 A, INDIAN PRESS COLONY
NEAR KASHI ANATHALAYA,
MALDAHIYA, VARANASI – 221002

OR

C-60/30 A GAYA PRASAD BUILDING
LAHURABIR – VARANASI – 221002

Phone – 43525

Better Coaching For Better Tomorrow.

With Best Compliments From :–

BHARAT FORGE

India's No. 1 Forge Company

Manufacturer of :

Quality Steel Forgings

And

Finish Machined Crankshafts

Bharat Forge Limited
Mundhwa
Pune Cantonment
PUNE 411 036 (MAHARASHTRA)

Tel. (0212) 671666
Tlx. 145-234 FORG IN
Fax. (0212) 670512/670693
Tgm. FORGE PUNE 411 036

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

Continental & Eastern Agencies

3204 & 3214, B 1, Ram Bazar

MIN GATE, DELHI.

With best compliments from :—

Advanced Micro Systems

PVT. LTD.

9-10 HMT Nagar Nacharam, Hydrabad

Manufacturer of Flasher Light for Locomotives

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

Indfoss India Ltd.

207-208 ANSAL BHAWAN

16 Kasturba Gandhi Marg, New Delhi—1

MANUFACTUER OF TEMPERATURE SWITCH, PRESSURE SWITCHES, THERMOSTATE AND REFREGERATION ITEMS.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

Amco Batteries Limited

6th Floor, Centenary Builing,

M. G. Road, Bangalore - 560 001

Manufacturers of Lead Acid Storage Batteries to Highest International Standards.

With Best Compliments From :—

GLOSTER

FIRST TO INTRODUCE

Continuous vulcanising process for

RUBBER INSULATED CABLE

Infra red Curing Process for

SILICONE CABLE

Radiant Curing Process for

66 KV XLPE CABLE

110 KV XLPE CABLE

AND NOW

132 KV XLPE CABLE

Fort Gloster Industries Limited

31 Chowringhee Road, Calcutta 700 016

PHONE : 298241–45 (5 LINES) TELEX : 021–5668 FGI IN

REGD OFFICE:

21, Strand Road, Calcutta–700 001

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

UNIVERSAL CABLES LIMITED

P.B. No. 9 SATNA

Manufacturers of :

ALL TYPES OF CABLES & CAPACITORS

You Name it - We Make it

UNISTAR

Always Ahead in Any Application Whatsoever

Sales Representative :

M/s United Cables Distributors,

Plot No. 8,
Shanti Kunj,
Dumraon Bagh Colony,
Assi,
VARANASI - 221 005.

WITH BEST COMLIMENTS FROM :—

Poona Radiators & Oilcoolers

93, MANJIT [BK]. POONA 412 307

MANUFACTURERS OF :—

Radiators, Oilcoolers and Heat Exchangers, Suitable for Diesel Engines, Generator Sets, Cranes, Automobiles, Compressors, Earth Moving Equipment, Diesel Locomotives and for Agricultural and Marine Applications

Phone : 670320, 670330, 670810

Gram : RADIATOR, POONA
Telex : 0145 7318

With Best Compliments From :—

M/s UNISALE MANUFACTURES & AGENCIES Pvt. Ltd.

55 A. Kali Temple Road

CALCUTTA—700026

AUTHORISED DEALER OF

M/s Andrew Yule & Co. Ltd.,

Togami Unit.

With Best Compliments From :—

UB MEC Batteries

(a division of Herbertsons Ltd.)

8/1 B Chowringhee Lane

Calcutta - 16

(Phone - 44 - 1963)

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

MEDHA SERVO DRIVATE LIMITED

MANUFACTURERS OF :

Speed - Time - Distance Recorders for Railway Applications

Address

P-4/5 B. I. D. A., NACHARAM, HYDERABAD – 501 507

Telephone : 852791 Grams : 'MEDRIVE'

Telex : 0425-7099 PCO-IN Telefax : 0842-868846.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :

ANUP MALLEABLES LIMITED

MANUFACTURER OF :

(All Types Of Steel Castings)

One Of The Most Modern Engineering Complex In Eastern India Dedicated In The Service OF

MINISTRY OF RAILWAYS	:	POWER PLANTS
MINISTRY OF DEFENCE	:	CEMENT PLANTS
INTEGRATED STEEL PLANTS	:	REFRACTORY PLANTS
COAL INDIA AND ITS SUBSIDIARIES	:	IRRIGATION SECTOR
HEAVY ENGINEERING UNITS	:	FERTILIZER PLANTS
O N G C		

AND

MANY OTHER VALUED CUSTOMERS

ADMINISTRATIVE OFFICE :
P. O Nag Nagar,
Dhaiya – 826 004
Dhanbad.
Phone No. : 7321 and 4301

WORKS :
G. T. Road,
Near Kandra
Dak Bungalow
Govindpur.
Dhanbad.

REGISTERED OFFICE :
8, Weterloo Street.
Calcutta – 700 069
Phone : 28-6442
28-9975
Tlx. : 021-7188 CAST IN

TLX-629-271 CAST IN Phone : 3008, Cable : 'ANUP'

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

Asian Cables & Industries Limited

DUNCAN HOUSE

31 Nataji Subhas Road

CALCUTTA - 700 001

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :—

Central Cables Private Limited

Manufacturers of

HT & LT - PVC, XLPE, Rubber,
Frls Fire Survival Power & Control Cables

5, Temple Road
Civil Lines
NAGPUR — 440 001

Phone : 523054/525472/521389
Telex : 0715-423 CCPL in

Fax : 0712-524079 & 524759
Gram : Centcap

With best compliments from :—

RAYCO ELECTRO ENTERPRISE

43, Bepin Behari Ganguly Street, Calcutta-700 012

Show Room :

2, Lal Bazar, 3rd Floor, Room No. : 07

Calcutta - 700 001

* Jewel & Pilot Indicating Lamp, PVC & Bekelite Connectors
* Relay, wire Resistances Rotary switches, Ammeters & Volt meters etc.

WITH BEST COMPLIMENTS FROM :-

PEFCO FOUNDRY

A Division of Kores [India] Limited

E 14 Bhosari Industrial Area

PUNE—411 026

MANUFACTURERS OF :

S. G. Iron, Alloy Cast Iron, Steel, Stainless Steel, Ni-hard, Ni-resist castings, Power Resistors, for grounding neutral of transfarmers, starting/speed control of Motors etc.

Tel : 790741/790511

Tlx : 0146-280

Gram : PEFCO, Pune - 411 026

Fax : 91 - 212 - 790014.

With Best Compliments From :—

CIMMCO

(Steel Foundry)

A reliable name
wherever STEEL CASTINGS are used
Numerous sizes shapes & specification
classified as

"CLASS A" FOUNDRY

by Research Designs and Standards Organisation
(Govt. of India, Min. of Rlgs.)
in accordance with IS - 12117 - 1987

Major Suppliers to :—

Zonal Railways and Wagon Builders
Goach and Loco Builders
Power and Mining Industries
Cement and Sugar Plants
Defence
Heavy Electricals and
Heavy Machine Builders, etc. etc.

Cimmco - Casting Steel : "Casting Future"
Quality : Reliability : Satisfaction

Cimmco Ltd.

(STEEL FOUNDRY DIVISION)

Agra Loop Road, Birlanagar, Gwaliar – 474 004, (India)
Phone : 368990, 368991, 368992, 368993, 368994, 368995, 368122.
Gram : CIMSTEEL, Telex : 0786 – 201, Fax : 91 – 751 – 368513

With Best Compliments From :—

The English Electric Co. of India Ltd.

BANGALORE ● BOMBAY ● CALCUTTA ● LUCKNOW

MADRAS ● NEW DELHI.

TRITON ENGINEERING PVT. LTD.

D-676 CHAWLA COLONY,

BALLABGARH, FARIDABAD

PHONE No. 82-32258

Manufacturers of : Diesel Loco Engine Parts,

Fuel Injection & Oil Pipes,

Push Rod, Cross Head Lifters,

Bearing Sleeves and

Bearing Carriers.

INJECTO LIMITED

20/5, MATHURA ROAD
FARIDABAD

PHONE NOS : 82-41834, 82-41835
GRAMS : 'INJECTO' FARIDABAD.

Manufacturers of :

Carburettors, Fuel Pumps, Repair Kits, Fuel & Oil Hoses, Fuel Injection & Oil Pipes, Brake Hoses, H. P. Hoses Metallic Flexible Tubes, Push Rod & Yoke Assembly, Cross Head Lifters, Bearing Sleeves, Bearing Carriers, Pressure Die Castings.